अथाष्टादशं काण्डम्

अथ त्रयस्त्रिंशः प्रपाठकः॥

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

इस काण्ड में 'अथर्वा' ऋषि है। 'अथ अर्वाङ्' अपने अन्दर देखनेवाला, आत्मनिरीक्षण करनेवाला, अतएव 'अथर्वा' न डाँवाडोल होनेवाला। 'यमः' देवता है—इस काण्ड का सम्बन्ध इस यम 'मृत्यु के देवता' से ही है। 'यम' का स्मरण करनेवाला ही अथर्वा बनता है। इसका प्रारम्भ 'यम-यमी' के संवाद से होता है—

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सन्तान क्यों?

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः॥ १॥

१. यमी यम से कहती है कि **ओचित्**=निश्चय से **सखायम्**=मित्रभूत तुझको **सख्या**=मित्रभाव से **आववृत्याम्**=आवृत्त करती हूँ। 'सखे सप्तपदी भव' इस सातवें पग के वाक्य के अनुसार पति-पत्नी इस संसार-समुद्र में एक-दूसरे के सखा तो हैं ही, इसलिए मैं तुझे पतिरूप से चाहती हूँ कि **पुरूचित्**=इस अत्यन्त विस्तृत **अर्णवम्**=संसार-समुद्र को **जगन्वान्**=गया हुआ पुरुष **तिरः**=अन्तर्हित हो जाता है। मनुष्य मृत्यु का शिकार होकर संसार-समुद्र में लीन हो जाता है। २. इस बात का ध्यान करके ही **प्रतरं दीध्यानः**=इस विस्तृत समुद्र का विचार करता हुआ **वेधाः**=बुद्धिमान् पुरुष **अधि क्षमिः**=इस पृथ्वी पर **पितुः नपातमा**=पिता के न नष्ट होने देनेवाले सन्तान को **आदधीत**=आहित करता है। इसप्रकार इस नश्वर शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उस सन्तान के रूप में बना ही रहता है। यमी का युक्तिक्रम यह है कि (क) इस विशाल संसार-समुद्र में मनुष्य कुछ देर बाद तिरोहित हो जाता है। (ख) सन्तानन के रूप में ही उसका चिह्न बना रहता है, (ग) अतः सन्तान-प्राप्ति के लिए तू मुझे पत्नी रूप में चाहनेवाला हो।

भावार्थ—इस विशाल संसार-समुद्र में मनुष्य सन्तान के रूप में ही बना रहता है, अतः सन्तान-प्राप्ति के लिए 'यम' 'यमी' की कामना करे। 'यम-यमी' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि पति-पत्नी संयत जीवनवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

विवाह-सम्बन्ध समीप में नहीं

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन्॥ २॥

१. यमी को यम कहता है कि सन्तान-प्राप्ति के लिए पुरुष और स्त्री का मित्रभाव ठीक ही है, परन्तु **ते सखा**=सहोत्पन्न होने से तेरा मित्र मैं **एतत् सख्यम्**=इस पति-पत्नीरूप मित्रता को **न वष्टि**=नहीं चाहता, **यत्**=चूँकि **सलक्ष्मा**=समान लक्षणोंवाली कन्या, सन्तानोत्पत्ति के लिए

विषुरूपा=बहुत ही विषम रूपवाली होती है। सन्तानोत्पत्ति के लिए सलक्ष्मत्व हानिकर है। ऐसे सम्बन्धों में सन्तान विरूप व अल्पजीवी उत्पन्न होती है। २. **महस्पुत्रासः**=तेजस्विता के द्वारा अपने को पवित्र व रक्षित करनेवाले (पुनाति त्रायते) **असुरस्य वीराः**=उस प्राणशक्ति के देनेवाले प्रभु के वीर पुत्र (असून् राति) **दिवः धर्तारः**=प्रकाश व ज्ञान का धारण करनेवाले व्यक्ति इस समीप सम्बन्ध का **उर्वियापरिख्यन्**=अत्यन्त ही निषेध करते हैं। समीप सम्बन्धों में (क) सन्तान तेजस्वी नहीं होती, क्योंकि ये सम्बन्ध भोगवृत्ति को प्रधानता देने पर ही होते हैं। (ख) हम उस प्रभु के पुत्र न रहकर प्रकृति के पुत्र बन जाते हैं और सन्तानक्षीण प्राणशक्तिवाले होते हैं। (ग) इन सम्बन्धों के होने पर ज्ञान भी क्षीण हो जाता है।

भावार्थ—समीप-सम्बन्ध विकृत सन्तानों को जन्म देते हैं। इनके कारण सन्तान निस्तेज, विलासमय व क्षीण ज्ञानवाले होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सन्तान के लिए वीर्यदान की अनिन्द्यता

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य॥
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः॥ ३॥

१. यमी कहती है कि **ते**=वे **अमृतासः**=भोगों के पीछे न मरनेवाले (अमृत) पुरुष भी **एतत्**=इस पति-पत्नी सम्बन्ध को **घा उशन्ति**=चाहते ही हैं। प्रभु के अमृत मानसपुत्र इस सम्बन्ध द्वारा ही तो लोक में इन प्रजाओं को जन्म देते हैं। वे तो इस सम्बन्ध को **चित्**=निश्चय से **एकस्य मर्त्यस्यः**=एक मनुष्य का **त्यजसम्**=त्याग समझते हैं। सन्तानोत्पत्ति के लिए यह वीर्य का दान तो सचमुच एक महान् त्याग है। २. इसलिए हे यम! **ते मनः**=तेरा मन **अस्मे मनसि धायि**=हमारे मन में निहित हो, अर्थात् तू मेरी कामना करनेवाला हो। **जन्युः पतिः**=सन्तान को जन्म देनेवाला पति बनकर **तन्वं आविविश्याः**=मेरे शरीर में प्रवेश कर। **'तद्धि जायाया जायात्वं यदस्यां जायते पुनः'** यही तो जाया का जायात्व है कि पुरुष पुनः उसमें जन्म लेता है। एवं पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर वह पुरुष अमर बना रहता है 'प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्'।

भावार्थ—प्रभु के मानसपुत्र भी परस्पर पति-पत्नी भाव को चाहते ही हैं। यह तो एक महान् त्याग है। सन्तान को जन्म देने के लिए यह सम्बन्ध अनिन्द्य है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उत्कृष्ट बन्धुत्व

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ॥ ४॥

१. यम उत्तर देता हुआ कहता है कि **यत्**=जिस बात को **पुरा**=इससे पहली सृष्टि में **कत् ह न चकृमा**=कभी भी नहीं किया है, **नूनम्**=निश्चय से **ऋतं वदन्तः**=सत्यों को ही अपने जीवन से कहते हुए हम **अनृतं रपेम**=अनृत को परे भगा दें। जो सत्य नहीं है, उसे अपने जीवन में क्यों लाएँ। यह ठीक नहीं है। २. सृष्टि के प्रारम्भ में पुरुष **गन्धर्वः**=वेदवाणी का धारण करनेवाला है तथा **अप्सु**=कर्मों में निवासवाला है **च**=और **योषा**=स्त्री भी **अप्या**=कर्मों में उत्तमता से लगी रहनेवाली है। वस्तुतः इसीलिए तो वह **योषा**=गुणों को अपने से संपृच्य करनेवाली तथा दोषों को अपने से दूर करनेवाली है। **सः**=वह ज्ञान का धारण व कर्मशीलता ही हम सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न होनेवाले स्त्री-पुरुषों का **नाभिः**=बन्धन है—हमें परस्पर बाँधनेवाली बात

है। **तत्**=वही **नौ**=हम दोनों का भी **परमं जामि**=सर्वोत्कृष्ट बन्धुत्व है 'पति पत्नी' बनने से ही तो बन्धुत्व नहीं होता?

भावार्थ—पिछली सृष्टि में भी भाई-बहिन कभी पति-पत्नी के समीप सम्बन्ध में सम्बद्ध नहीं हुए। सदा ऋत का आचरण करते हुए हमें अनृत को अपनाना शोभा नहीं देता। 'ज्ञानधारण व क्रियामय जीवन' ही पुरुष-स्त्री का सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध है। वही भाई-बहिन का परम बन्धुत्व है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सम्बन्ध निर्माता' प्रभु

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः॥ ५॥

१. यमी पुनः यम की परीक्षा लेती हुई कहती है कि **जनिता**=हम सबको जन्म देनेवाले उस प्रभु ने **गर्भे नु**=गर्भ में ही, साथ-साथ जन्म देने से **नौ**=हम दोनों को **दम्पती**=पति पत्नी **कः**=बनाया है। वे प्रभु **देवः**=पूर्ण ज्ञानमय हैं, **त्वष्टा**=वे ही सब सम्बन्धों का निर्माण करनेवाले हैं, **सविता**=सब प्रेरणाओं को देनेवाले हैं **विश्वरूपः**=और उन प्रेरणाओं को देकर इस संसार को रूप प्राप्त करानेवाले हैं। २. **अस्य व्रतानि**=इस सविता देव के व्रतों को **नाकिः प्रमिनन्ति**=कोई भी हिंसित नहीं करते। प्रभु की व्यवस्था को कोई तोड़नेवाला नहीं है। **नौ**=हम दोनों के **अस्य**=इस सम्बन्ध को **पृथिवी उत द्यौः**=पृथिवी और द्युलोक, अर्थात् सारा संसार **वेद**=जानता है। 'हमारा यह सम्बन्ध कोई छिपा हुआ व पापमय हो' ऐसी बात नहीं है।

भावार्थ—हमारे इस पति-पत्नीरूप सम्बन्ध को करनेवाले तो हमारे पिता प्रभु ही हैं। यह स्पष्ट है—'कोई छिपी हुई व पापमय बात हो' ऐसा नहीं है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ज्ञानोज्ज्वल जीवन

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्॥ ६॥

१. यम कहता है कि **कः**=वे आनन्दमय प्रभु **अद्य**=आज इस मानवदेह में **ऋतस्य धुरि**=यज्ञ के निर्वाह में—यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त कराने के लिए **गाः युङ्क्ते**=ज्ञान की वाणियों को हमारे साथ जोड़ते हैं। ये ज्ञान की वाणियाँ **शिमीवतः**=कर्मवाली हैं—इनमें कर्मों का उपदेश दिया गया है। **भामिनः**=सत्यज्ञान के द्वारा उत्तम कर्म कराती हुई ये वाणियाँ हमें तेजस्वी बनाती हैं। **दुर्हृणायून्**=यह (हृणीयतिर्हातिकर्म हातुमशक्यम्) छोड़ने योग्य नहीं है। स्वाध्याय नित्यकर्त्तव्य होने से इनका छोड़ना सम्भव नहीं। **आसन् इषून्**=मुख से उच्चारित हुई ये वाणियाँ शत्रुओं का संहार करनेवाली हैं—इषु तुल्य हैं। **हृत्स्वसः**=(अस् कान्तौ) हृदयों में चमकनेवाली हैं। **मयोभून्**=ये कल्याण का भावन करनेवाली हैं। २. **यः**=जो भी व्यक्ति **एषाम्**=इन ज्ञानवचनों के **भृत्याम् ऋणधत्**=भाव को समृद्ध करता है, अर्थात् इन वचनों को अधिक-से-अधिक धारण करता है, **सः जीवात्**=वह ही वस्तुतः जीता है—सुन्दर जीवनवाला होता है। ज्ञानोज्ज्वल जीवन ही जीवन है।

भावार्थ—हमें प्रभुप्रदत्त ज्ञान की वाणियों को धारण करके उज्ज्वल जीवनवाला बनने का प्रयत्न करना चाहिए। भोग-विलास की बातों में समय को नष्ट न करना चाहिए।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पहले दिन की बात

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत्।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन्॥ ७॥

१. **अस्य प्रथमस्य अह्नः**=इस पहले दिन की बात को **कः वेद**=परमात्मा ही जानता है। **ईम्**=निश्चय से **कः ददर्श**=उस दिन की बात को प्रभु ही देखते हैं और **इह**=इस सृष्टि के प्रारम्भ समय में **कः**=वह अनिर्वचनीय महिमावाले प्रभु ही **प्रवोचत्**=ज्ञान का प्रवचन करते हैं। उस पहले दिन की बात को मनुष्य ठीक-ठीक नहीं जान पाता और अगले सृष्टिक्रम में तो निश्चय से पति-पत्नी सम्बन्ध दूर-दूर ही होता है। २. **मित्रस्य**=सबके साथ स्नेह करनेवाले **वरुणस्य**=द्वेषादि निवारण करनेवाले उस प्रभु का **धाम**=तेज **बृहत्**=बहुत अधिक है। उसका तेज हमारी वृद्धि करनेवाला है। **उ**=और वे **कत्**=(तनोति) सुख का विस्तार करनेवाले प्रभु ही **ब्रवः**=सृष्टि के प्रारम्भ में हमें उपदेश देते हैं—वे हमारे पिता ही नहीं, गुरु भी हैं। हम सब उनके शिष्य हैं। वे प्रभु **नॄन्**=सब उन्नतिशील मनुष्यों को **वीच्या**=हृदयतरंगों से, अर्थात् भावनाओं से **आहनः**=आहत करते हैं (हन् गतौ)—हमारे जीवनों को गतिमय बनाते हैं। भावनाओं के अभाव में जीवन शक्तिशून्य हो जाता है। 'काम' (भाव) से सब वेदाधिगाम व वैदिक कर्मयोग सम्पन्न होता है। इस काम को अपवित्र न होने देने के लिए ज्ञान है। एवं, ज्ञान व काम (भाव) मिलकर हमारे जीवनों को व सम्बन्धों को सुन्दर बनाते हैं।

भावार्थ—पहले दिन की बात को प्रभु ही जानते हैं। प्रभु का तेज अनन्त है। उनका मौलिक उपदेश यही है कि हम प्रेम व निर्द्वेषता से चलें। वे प्रभु ही हमें ज्ञान देते हैं और वे ही हमारे हृदयों को भावान्वित करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**आर्षीपङ्क्तिः** ॥

समाने योनौ सह शेय्याय

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा॥ ८॥

१. **यमस्य**=तुझ यम का **कामः**=प्रेम **यम्यं मा**=मुझ यमी के प्रति **आगन्**=प्राप्त हो। **समाने योनौ**=समान ही घर में **सहशेय्याय**=साथ-साथ निवास के लिए हम हों। २. हे यम! तू मेरी कामना कर और मैं **जाया इव**=पत्नी की भाँति **पत्ये**=पति के रूप में तेरे लिए **तन्वं रिरिच्याम्**=अपने शरीर को (रिरिच्यां प्रकाशयेयम्) प्रकाशित करूँ, अर्थात् हम परस्पर पति-पत्नी के रूप में हों। **चित्**=और निश्चय से **विवृहेव**=हम 'धर्म, अर्थ, काम' रूप पुरुषार्थों के लिए उद्योग करें। **रथ्या चक्रा इव**=जैसे रथ के दो पहिये रथ को उद्दिष्ट स्थल पर पहुँचानेवाले होते हैं, उसीप्रकार हम पति-पत्नी इस जीवन-रथ के दो पहियों के समान हों और जीवन को सफल बनाएँ।

भावार्थ—यमी कहती है कि हे यम! क्या तुझे मेरे प्रति प्रेम नहीं! हमारा आपस में सम्बन्ध स्वाभाविक है। हम पति-पत्नी बनकर धर्म, अर्थ, काम आदि पुरुषार्थों को सिद्ध करते हुए जीवन को सफल करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवस्पश हमें देख रहे हैं

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा॥ ९॥

१. यम उत्तर देता हुआ कहता है कि 'यह समझना कि हमारा यह सम्बन्ध छिपा रहेगा' ठीक नहीं है। मनुष्यों को न भी पता लगे, तो भी सूर्य आदि देव तो हमारे इन कर्मों को देखते ही हैं। **ये एते**=जो ये **देवानां स्पशः**=देवों के गुप्तचर, मनुष्यों के आचरण को देखते हुए **इह चरन्ति**=यहाँ विचरण करते हैं, **न तिष्ठन्ति**=न तो खड़े होते हैं, **न निमिषान्ति**=न पलक मारते हैं, अर्थात् ये देव अन्तर्हित हुए-हुए हमारे सब कार्यों को जान रहे हैं। २. इसलिए हे **आहनः**=गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करनेवाली मेरी बहिन! **मद् अन्येन**=मुझसे भिन्न व्यक्ति के साथ **तूयम्**=शीघ्र **याहि**=तू इस जीवनयात्रा में गतिशील हो। **तेन**=उसी के साथ **विवृह**=तू धर्म, अर्थ व कामरूप पुरुषार्थ के लिए उद्योग कर। उसी के साथ मिलने पर तुम दोनों **रथ्या चक्रा इव**=रथ के पहियों के समान जीवन-यात्रा में आगे और आगे बढ़नेवाले होओ।

भावार्थ—देव हमारे प्रत्येक कर्म को देख रहे हैं, अतः हम समीप सम्बन्धों को दूर रखकर, दूर ही सम्बन्ध बनाकर धर्मार्थ, कामरूप पुरुषार्थ को सिद्ध करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सुदूर सम्बन्ध

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि॥ १०॥

१. यम चाहता है कि उसकी बहिन (मद् अन्येन) उससे भिन्न जिस भी पुरुष को पति रूप में प्राप्त करे **रात्रीभिः अहभिः**=रात-दिन **अस्मा**=अपने इस पति के लिए **दशास्येत्**=आराम देने की इच्छा करें। उसकी बहिन व बहिन के पति पर **सूर्यस्य चक्षुः**=सूर्य की आँख **मुहुः**=बारम्बार **उन्मिमीयात्**=खुले, अर्थात् इनका जीवन दीर्घ हो। २. जैसे **दिवा पृथिव्या**=द्युलोक पृथिवीलोक के साथ **मिथुना सबन्धू**=परस्पर साथ-साथ समान बन्धुत्ववाले होते हैं, उसीप्रकार ये भी बन्धुत्ववाले हों। द्युलोक व पृथिवीलोक कितने दूर-दूर हैं। इसीप्रकार यम चाहता है कि उसकी बहिन व उसके भावी पति भी सुदूर स्थितिवाले हों। **यमीः**=संयत जीवनवाली मेरी बहिन **यमस्य**=मुझ यम के **अजामि**=(अभ्रातरम्) असम्बद्ध व्यक्ति को, अर्थात् किसी सुदूर गोत्रवाले को ही **विवृहात्**=बढ़ानेवाली हो—उसी के वंश की वृद्धि करनेवाली बने।

भावार्थ—पत्नी दिन-रात पति के सुख का ध्यान करे। परस्पर मेल व प्रेम से ये पति-पत्नी दीर्घजीवी हों। द्युलोक व पृथिवीलोक जिस प्रकार परस्पर दूरी पर हैं, इसीप्रकार दूरस्थ पुरुष ही पति-पत्नी सम्बन्धवाले बनें, भिन्न गोत्रों में ही सम्बन्ध हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उत्कृष्ट युग

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्॥ ११॥

१. यम चाहता है कि **घा**=निश्चय से **ता**=वे **उत्तरा युगानि**=उत्कृष्ट युग—समय **आगच्छान्**=आएँ **यत्र**=जहाँ **जामयः**=बहिनें **अजामि**=(अभ्रातरम्) न भाई को ही, न रिश्तेदार को ही, अर्थात्

सुदूर गोत्रवाले को ही **कृणवन्**=पतिरूपेण स्वीकार करें। वस्तुतः सुदूर सम्बन्धों से ही उत्कृष्ट सन्तानों का निर्माण होता है। तभी एक समाज उत्कृष्ट युग में पहुँचता है। २. हे यमि! तू **वृषभाय**=एक शक्तिशाली श्रेष्ठ पुरुष के लिए **बाहुम्**=अपनी भुजा को **उपबर्बृहि**=उपबर्हण व तकिया बनानेवाली हो, अर्थात् उस श्रेष्ठ पुरुष के साथ तेरा सम्बन्ध प्रेमपूर्ण हो। हे **सुभगे**=उत्तम भाग्यवाली! **मत् अन्यम्**=मुझसे भिन्न विलक्षण पुरुष को ही **पतिम्**=पति के रूप में **इच्छस्व**=चाहनेवाली हो।

भावार्थ—सुदूर सम्बन्ध में ही सौभाग्य व सौन्दर्य है। यह सुदूर सम्बन्ध ही एक राष्ट्र में उत्कृष्ट युग को लाने का कारण बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

संरक्षण व सुस्थिति

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि॥ १२॥

१. यमी परीक्षा लेती हुई कहती है कि **यत्**=यदि **अनाथं भवाति**=बहिन अनाथ—रक्षक से रहित होती है तो **किं भ्राता असत्**=वह भाई कुत्सित होता है। भाई को तो बहिन का सदा रक्षक होना चाहिए, **उ**=और **यत्**=यदि भाई को **निर्ऋतिः**=दुर्गति व कष्ट **निगच्छात्**=प्राप्त होता है तो वह **किं स्वसा**=कुत्सित ही तो बहिन है, अर्थात् हे यम! तू सदा मेरा रक्षक बन और मैं तुझे सदा सुख पहुँचानेवाली बनूँ। ऐसा ही हमारा सम्बन्ध बना रहे। २. **काम-मूता (मव बन्धने)**=प्रेमभाव से बद्ध हुई-हुई **एतत्**=यह बात **बहुरपामि**=फिर-फिर मैं कहती हूँ। तू **मे तन्वा**=मेरे शरीर से **तन्वम्**=अपने शरीर को **संपिपृग्धि**=सम्यक् संपृक्त करनेवाला हो। इसप्रकार हम दो होते हुए भी एक हो जाएँ।

भावार्थ—पति पत्नी का रक्षण करता है। पत्नी पति को सुस्थिति प्राप्त कराती है। परस्पर प्रेमभाव से युक्त होकर वे एक-दूसरे की न्यूनताओं को दूर करनेवाले होते हैं। पति पत्नी वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सौभाग्य सम्पन्न गृह

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम्।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्॥ १३॥

१. हे **यमि**=संयत जीवनवाली बहिन! **अत्र**=यहाँ इस संसार में **अहम्**=मैं **ते नाथं न अस्मि**=तेरा नाथ नहीं हूँ—तुझे पत्नीरूप में चाहनेवाला (नाथ याच्ञायाम्) नहीं हूँ। **ते तनूम्**=तेरे शरीर को **तन्वः**=अपने शरीर से **न संपपृच्याम्**=सम्पृक्त नहीं करता हूँ। २. तू **मत् अन्येन**=मुझसे भिन्न (विलक्षण) पुरुष के साथ **प्रमुदः कल्पयस्व**=प्रकृष्ट आनन्दों को साधनेवाली हो, अर्थात् असगोत्र पुरुष को पतिरूप में प्राप्त करके आनन्दयुक्त जीवनवाली हो। हे **सुभगे**=उत्तम भाग्यवाली! **ते भ्राता**=तेरा भाई **एतत्**=इस पतिरूप सम्बन्ध को **न वष्टि**=नहीं चाहता है।

भावार्थ—हम सुदूर सम्बन्धों को स्थापित करते हुए, घरों को सुख-समृद्धि-सम्पन्न बनाएँ। फूलते-फलते हमारे घर आमोद-प्रमोद से भरपूर हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

महान् असंयम्

न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय॥ १४॥

१. **वा उ**=निश्चय से **ते तनूम्**=तेरे शरीर का **तन्वा**=अपने शरीर से **न संपपृच्याम्**=नहीं सम्पृक्त करता हूँ। **यः**=जो **स्वसारम्**=बहिन को **निगच्छात्**=पतिभाव से प्राप्त होता है—सम्भोग के लिए प्राप्त होता है, उसे **पापं आहुः**=पापी कहते हैं। २. **एतत्**=यह **मे**=मेरे **मनसः**=मन का तथा **हृदः**=हृदय का **असंयत्**=असंयम ही होगा, **यत्**=यदि **भ्राता**=भाई होता हुआ मैं **स्वसुः**=बहिन के **शयने**=बिछौने पर **शयीय**=सोऊँ।

भावार्थ—यह बड़ा भारी पाप है तथा असंयम की बात है कि भाई बहिन को पतिभाव से प्राप्त हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आर्षीपङ्क्तिः**॥

कक्ष्या जैसे युक्त को, बेल जैसे वृक्ष को

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम।
अन्या किल त्वां कक्ष्ये [व युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम्॥ १५॥

१. सम्पूर्ण कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होते हुए अपने भाई को देखकर हृदय में प्रसन्न होती हुई यमी कहती है कि **बतः बत असि** (Joy, Wonder)=अरे भाई! तू तो मेरे हृदय को आनन्दित व आश्चर्यित करनेवाला है। मैंने अभी तक **ते मनः**=तेरे मन को **हृदयं च**=व हृदय की गहराई को **न एव अविदाम**=नहीं ही जाना था। आज तेरे मानसभावों व हृदय की पवित्रता को जानकर बड़ी प्रसन्नता, खुशी हुई है। २. यह ठीक ही है कि **अन्या किल**=निश्चय से मुझसे भिन्न (विलक्षण) अर्थात् सुदूर गोत्रवाली ही कोई कन्या **त्वां परिष्वजाते**=तेरा आलिंगन करे। उसीप्रकार आलिंगन करे **इव**=जैसे **लिबुजः**=बेल वृक्ष को आलिंगित करती है, अथवा **इव**=जिस प्रकार **कक्ष्या**=कमर में बाँधी जानेवाली रज्जु **युक्तम्**=अपने से सम्बद्ध घोड़े को आलिंगित करती है। तेरा अपनी पत्नी से सम्बन्ध तुझे शक्तिशाली बनानेवाला हो, उसीप्रकार जैसे कक्ष्या घोड़े को कसी हुई कमरवाला बनाती है और तू पत्नी का उसीप्रकार सहारा हो जैसे कि वृक्ष बेल का।

भावार्थ—सुदूर सम्बन्ध होने पर पत्नी पति की शक्ति व उत्साह-वर्धन का कारण बने और पति पत्नी का आश्रय व वर्धक हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सुभद्रां सवित्'

अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्॥ १६॥

१. यम भी बहिन के लिए मंगलकामना करता हुआ कहता है कि हे **यमि**=संयत जीवनवाली! **त्वम्**=तू **उ**=निश्चय से **अन्यम्**=अपने से विलक्षण रुधिरादि धातुओंवाले पुरुष को ही **सुपरिष्वजातै**=सम्यक् आलिंगन करे। उसीप्रकार **इव**=जैसेकि **लिबुजा**=बेल **वृक्षं**=वृक्ष को आलिंगित करती है। २. **त्वम्**=तू **तस्य मनः**=उसके मन को **वा**=निश्चय से **इच्छा**=चाहनेवाली बन। **वा स तव**=और वह भी तेरे मन को चाहनेवाला हो। तुम्हारा परस्पर प्रेम हो, तुम एक-दूसरे के भावों को आदृत करनेवाले होओ, तुम्हारा परस्पर ऐकमत्य हो। **अधा**=अब **सुभद्रां**

संविदम्= कल्याणी बुद्धि को (Understanding) परस्पर ऐक्यमतिता को (agreement) **कृणुष्व**=तू करनेवाली हो। तुम्हारे घर में शुभविचार व सामञ्जस्य बना रहे।

भावार्थ—पति पत्नी का परस्पर प्रेम हो। घर में सदा 'सुभद्रां संवित्' बनी रहे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

आपः, वाताः, ओषधयः

त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन्भुवन आर्पितानि॥ १७॥

१. **कवयः**=ज्ञानीपुरुष, क्रान्तदर्शी पुरुष—तत्त्व तक पहुँचनेवाले पुरुष उस **पुरुरूपम्**=अनन्त रूपों को उत्पन्न करनेवाले (पुरूणि रूपाणि यस्मात्) **दर्शतम्**=दर्शनीय **विश्वचक्षणम्**=सर्वद्रष्टा—सभी का ध्यान (पालन) करनेवाले प्रभु से **त्रीणि छन्दांसि**=तीन (छन्दांसि छादनात्) रक्षणात्मक वस्तुओं को **वियेतिरे**=विशेषरूप से चाहते हैं (Long for)। वे वस्तुएँ हैं—**आपः**=जल, **वाताः**=वायु तथा **ओषधयः**=ओषधियाँ। पीने के लिए जल, श्वास लेने के लिए वायु तथा भोजन के लिए ओषधियाँ (वनस्पतियाँ)। २. **तानि**=वे तीनों वस्तुएँ **एकस्मिन् भुवने**=एक ही भुवन में **आर्पितानि**=प्रभु द्वारा सृष्टि के प्रारम्भ में स्थापित की गई हैं। किसी भुवन के व्यक्ति को इनमें से किसी वस्तु के लिए लोकान्तर में नहीं जाना पड़ता। अपने ही भुवन में उसे ये सब सुलभ होती हैं।

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष प्रभु से 'जल, वायु व ओषधियाँ' इन तीन वस्तुओं को ही मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चाहते हैं। वस्त्र भी रुई से ही प्राप्त हो जाते हैं। प्रभु ने इन तीनों वस्तुओं को प्रत्येक भुवन में स्थापित किया है। इन्हीं से लोकनिर्वाह होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

द्युलोक-दोहन

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून्॥ १८॥

१. **वृषा**=सब सुखों का वर्षण करनेवाला वह प्रभु **यह्वः**=महान् है, **अदाभ्यः**=अहिंसित है—अपने कार्यों में किसी से पराभूत नहीं होता। वे प्रभु **वृष्णे**=औरों के सुख के लिए धन का वर्षण करनेवाले यज्ञशील पुरुष के लिए **दिवः दोहसा**=द्युलोक के दोहन से **अदितेः**=स्वास्थ्य के हेतु से **पयांसि दुदुहे**=जलों का दोहन व पूरण करते हैं। **अदितिः**=अखण्डन—स्वास्थ्य का नष्ट न होना। इस अदिति के हेतु से प्रभु वृष्टि-जल प्राप्त कराते हैं। ये वृष्टि-जल वस्तुतः अमृत हैं। २. **सः वरुणः**=वह हमारे कष्टों का निवारण करनेवाले प्रभु **यथा**=क्योंकि **धिया**=ज्ञानपूर्वक कर्मों से (धी=ज्ञान, कर्म) **विश्वं वेद**=सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराते हैं। **सः यज्ञियाः**=वह यज्ञशील पुरुष **यज्ञियान् ऋतून् यजति**=यज्ञ करने योग्य ऋतुओं को लक्ष्य करके यज्ञ करता है। ऋतुओं के अनुसार यज्ञ करने से वर्षा ठीक समय पर होती है, सब ऋतुएँ भी ठीक समय पर ठीक रूप में आती हैं, अतः वे हमारे स्वास्थ्य के लिए साधक बनती हैं।

भावार्थ—हम ऋतुओं के अनुसार यज्ञ करनेवाले बनें। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है। इन ज्ञानपूर्वक किये गये यज्ञों से प्रभु हमें सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराएँगे और वर्षा आदि ठीक समय पर होगी। हम पृथिवीलोक का दोहन करके यज्ञ करें व प्रभु हमारे लिए द्युलोक का दोहन करेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

स्तवन+वेदज्ञान+यज्ञ (रपद्+गन्धर्वीः+अप्या)

रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति॥ १९ ॥

१. एक घर में गृहिणी **रपत्**=प्रातः उठकर प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करती है। इससे बच्चों में भी भक्तिभाव का उदय होता है। यह गृहिणी वेदवाणी का धारण करती है। स्वाध्याय को जीवन का नियमित अंग बनाती है। यह स्वाध्याय ही तो जीवन को पवित्र बनाता है। **च**=और यह **अप्या**=(अप्सु साध्वी) कर्मों में उत्तम होती है। वेदज्ञान के अनुसार कर्मों में प्रवृत्त रहती है। इस कर्मशीलता के कारण ही **योषणा**=यह अवगुणों से अपने को पृथक् करनेवाली तथा गुणों से अपने को संपृक्त करनेवाली होती है। २. गृहपति भी प्रार्थना करता है कि **नदस्य**=स्तवन करनेवालों में मेरे स्तवन करने पर **नः**=हमारे **मनः**=मनों को **अदितिः**=अदीना देवमाता—अथवा अखण्डित (अ-दिति) यज्ञक्रिया, अथवा अविनाशी प्रभु **परिपातु**=सुरक्षित करें। प्रभु-स्तवन में लगा हुआ मेरा मन वासनाओं से आक्रान्त होगा ही कैसे? **नः**=हम सब (इस घर के व्यक्तियों) को **अदितिः**=वे अविनाशी प्रभु **इष्टस्य मध्ये निदधातु**=यज्ञों के बीच में स्थापित करें—प्रभु कृपा से हमारा जीवन यज्ञमय हो। **नः**=हमारा **भ्राता**=भरण करनेवाला **नः**=हममें सबसे बड़ा, **प्रथमः**=प्रथम स्थान में स्थित व्यक्ति **विवोचति**=हमारे लिए विविध क्रियाओं का उपदेश करता है। उस बड़े के कहने के अनुसार ही घर में हम सब क्रियाओं को करते हैं।

भावार्थ—आदर्श घर वही है जिसमें पति-पत्नी 'प्रभु का स्तवन करनेवाले, स्वाध्यायशील व पवित्र वृत्तिवाले' हैं। प्रभु कृपा से उनका मन यज्ञप्रवण बना रहता है। उस घर में यह नियम होता है कि बड़े ने कहा और छोटे ने किया। यही देवपूजा है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

'भद्रा' उषा

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्व [र्वती।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन्॥ २० ॥

१. **सा उ चित् नु उषा**=और अब वह उषा निश्चय से **मनवे**=समझदार पुरुष के लिए **उवास**=उदित होती है—अन्धकार को दूर करती है, जो उषा **भद्रा**=कल्याण व सुख देनेवाली है, **क्षुमती**=(क्षु शब्दे) स्तुति के शब्दोंवाली है, जिस उषा में प्रबुद्ध होकर हम प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होते हैं, **यशस्वती**=जो उषा हमारे लिए कीर्तिवाली है। हम उषा में ऐसे ही कर्मों को करें जो हमारी कीर्ति का कारण बनें—'स्तवन-स्वाध्याय व यज्ञों' को ही करनेवाले हों। **स्वर्वती**=यह उषा प्रकाशवाली होती है। इस समय स्वाध्याय के द्वारा हम अपने अन्दर प्रकाश को बढ़ानेवाले हों। २. ऐसा उषाकाल हमारे लिए तभी उदित होता है **यत्**=जब हम **ईम्**=निश्चय से **उशन्तम्**=हमारे हित की कामनावाले **उशताम्**=उन्नति की कामनावाले पुरुषों के **अनु क्रतुम्**=संकल्प व पुरुषार्थ के अनुसार **अग्निम्**=अग्रगति के साधक, **होतारम्**=उन्नति के लिए आवश्यक सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले उस प्रभु को **विदथाय**=ज्ञान-प्राप्ति के लिए **जीजनन्**=अपने हृदयों में प्रादूर्भूत करते हैं।

भावार्थ—जब हम अपने हृदयों में उस प्रभु के प्रकाश को देखने का दृढ़ संकल्प तथा

पुरुषार्थ करते हैं तभी हम प्रभु को देख पाते हैं। उसी समय हमारे लिए उषाकाल 'भद्र-क्षुमान्-यशस्वान् व स्वर्वान्' होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

आर्याः विशः

अध॒ त्यं द्र॒प्सं वि॒भ्वं᳡ विचक्ष॒णं विराभ॑रदिषि॒रः श्ये॒नो अ॑ध्व॒रे।
यदी॒ विशो॑ वृणते॑ द॒स्ममार्या॑ अ॒ग्निं होता॑र॒मध॒ धीर॑जायत॥ २१॥

१. **अध**=अब, गतमन्त्र के अनुसार हृदय में प्रभु का प्रकाश होने पर **श्येनः (श्यैङ् गतौ)** यह गतिशील **इषिरः**=प्रभु-प्रेरणा प्राप्त करनेवाला **विः**=जीवरूप पक्षी **त्यम्**=उस **द्रप्सम्**=हर्ष के कारणभूत सोम को **अध्वरे आभरत्**=अपने हिंसाशून्य जीवन-यज्ञ में पोषित करता है। जो सोम **विभ्वम्**=शरीर में शक्ति प्राप्त करानेवाला है तथा **विचक्षणम्**=विशिष्ट प्रकाश प्राप्त करानेवाला है। यह सोम मस्तिष्क में ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर प्रकाश भरनेवाला है। सोम के रक्षण के लिए गतिशीलता आवश्यक है (श्येनः) तथा ऊँची उड़ान का लेना—ऊँचे लक्ष्य का रखना आवश्यक है (विः)। इस सोम के रक्षण से शक्ति व ज्ञान की वृद्धि होती है (विभ्वं, विचक्षणम्) २. सोमरक्षण के बाद **यत्**=जब **ई**=निश्चय से **आर्याः विशः**=श्रेष्ठ प्रजाएँ **दस्मम्**=सब दुःखों व पापों को नष्ट करनेवाले—दर्शनीय, **अग्निम्**=अग्रणी—उन्नतिपथ पर ले-चलनेवाले, **होतारम्**=सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करानेवाले प्रभु को **वृणते**=वरती हैं। **अध**=इसके बाद ही **धीः**=ज्ञानपूर्वक कर्म **अजायत**=उत्पन्न होता है। आर्यपुरुष ज्ञानपूर्वक कर्मों को करते हैं। प्रभु का वरण करने से उनके कर्मों में पवित्रता बनी रहती है।

भावार्थ—गतिशील व ऊँचे लक्ष्यवाले बनकर हम सोम का रक्षण करें। सोमरक्षण के द्वारा शक्ति व प्रकाश प्राप्त करें। आर्यलोग प्रभु का ही वरण करते हैं, अतः उनके कर्म पवित्र होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

शाकाहारी-लोकहितकारी

सदा॑सि र॒ण्वो यव॑सेव॒ पुष्य॑ते॒ होत्रा॑भिरग्ने॒ मनु॑षः स्वध्व॒रः।
विप्र॑स्य वा॒ यच्छ॑शमा॒न उ॒क्थ्यो॒३॒ वाजं॑ सस॒वाँ उ॑प॒यासि॒ भूरि॑भिः॥ २२॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! आप **सदा रण्वः असि**=सदा रमणीय हो। आप उसी प्रकार सुन्दर हो, **इव**=जैसेकि **पुष्यते**=पुष्ट होनेवाले के लिए **यवसा**=यव आदि तृणधान्य सुन्दर होते हैं, जो किसी प्रकार की हानि न करके मनुष्य को नीरोग-ही-नीरोग बनाते है। इसी प्रकार प्रभु का सान्निध्य मनुष्य की अध्यात्म उन्नति के लिए अत्यन्त हितकर है। **होत्राभिः**=दानपूर्वक अदन की क्रियाओं से **मनुषः**=विचारशील पुरुष **स्वध्वरः**=उत्तम हिंसाशून्य कर्मोंवाला होता है। २. **यत्**=जब **शशमानः**=प्रभु का स्तवन करता हुआ अथवा द्रुतगतिवाला, अत्यन्त क्रियाशील व्यक्ति **विप्रस्य**=विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले व्यक्ति के **उक्थः वाजम्**=प्रशंसनीय बल को प्राप्त होता है। **वा**=निश्चय से हे विप्र! तू **ससवान्**=(सस्यवान्) वानस्पतिक भोजनों का सेवन करनेवाला बनकर **भूरिभिः**=धारण व पोषण की क्रियाओं से—लोकसंग्रहात्मक कार्यों से **उपयासि**=प्रभु के समीप प्राप्त होता है। प्रभु-प्राप्ति के लिए दो बातें आवश्यक हैं—(क) वानस्पतिक भोजन को ही अपनाना तथा (ख) अधिक-से-अधिक प्राणियों के हित में प्रवृत्त होना।

भावार्थ—मनुष्य दानपूर्वक अदन करता हुआ जीवन को यज्ञमय बनाता है। प्रभु-स्तवन व क्रियाशीलता को अपनाकर प्रशस्त बल प्राप्त करता है। शाकाहारी व लोकहितकारी बनकर प्रभु को पाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

जारः-असुरः

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती॥ २३॥

१. **पितरा**=द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को **उदीरय**=उत्कृष्ट गति प्राप्त करा। मस्तिष्क व शरीर दोनों को उन्नत कर। द्युलोक मस्तिष्क है और पृथिवीलोक शरीर 'द्यौ पिता, पृथिवी माता' (मूर्ध्नो द्यौः, पृथिवी शरीरम्।) इसके लिए तू प्रभु का स्तोता बन, क्योंकि **जारः**=प्रभु का स्तोता **भगम्**=भग को—ऐश्वर्य को **आ इयक्षति**=सब प्रकार से अपने साथ संगत करता है। उस भगवान् के सम्पर्क में आकर यह उपासक भी भगवाला बनता है। 'समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान व वैराग्य' रूप भग को यह प्राप्त करता है। **हर्यतः**=उस प्रभु की ओर जानेवाला और प्रभु-प्राप्ति की कामनावाला (हर्य गतिकान्तयोः) यह **हृत्तः**=हृदय से—हृदयस्थ उस प्रभु से **इष्यति**=प्रेरणा प्राप्त करता है। २. **वह्निः**=उस प्रेरणा को धारण करनेवाला यह व्यक्ति **विवक्ति**=उस प्रेरणा को अपने जीवन से कहता है, अर्थात् उस प्रेरणा के अनुसार कार्य करता है। इस **स्वपस्यते (सु अपस्)**=उत्तम कर्मों को अपनाने की इच्छा करते हुए और इस प्रकार **तविष्यते**=दिव्यगुणों की वृद्धि की इच्छावाले पुरुष के लिए (तु वृद्धौ) **मखः**=यह जीवन यज्ञ बन जाता है। **असुरः (अस् क्षेपणे)**=सब अशुभों को अपने से परे फेंकनेवाला यह **मती**=बुद्धि से **वेपते**=दुरितों को कम्पित करके दूर कर देता है। इसका जीवन पूर्ण पवित्र हो जाता है।

भावार्थ—हम मस्तिष्क व शरीर की उन्नति करें। प्रभु-स्तवन से भगवान् के भग को प्राप्त करें। हृदयस्थ प्रभु की वाणी को सुनें। उसके अनुसार कार्य करें। हमारा जीवन यज्ञमय हो जाए। हम बुद्धिपूर्वक कार्यों को करते हुए सब दुरितों को दूर करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

द्युमान्+अमवान्

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूषति द्यून्॥ २४॥

१. हे **अग्ने**=(अगि गतौ, गतिः ज्ञानम्) सर्वज्ञ व **सहसः सूनो**=बल के पुञ्ज सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यः मर्तः**=जो मनुष्य **ते**=आपकी **सुमतिम्**=कल्याणी बुद्धि को **अख्यत्**=(कथयति) प्रतिपादित करता है—आपके किये हुए वेदज्ञान को प्रसारित करना है, **सः**=वह **अतिप्रशृण्वे**=सब लोकों में ख्याति प्राप्त करता है। वह अत्यन्त यशस्वी जीवनवाला होता है। २. **इषं दधानः**=प्रभु की प्रेरणा को धारण करता हुआ, **अश्वैः**=इन्द्रियाश्वों से **वहमानः**=उस प्रेरणा को क्रियारूप में लाता हुआ **सः**=वह पुरुष **आद्युमान्**=सब ओर से प्रकाशमय जीवनवाला, अर्थात् अत्यन्त उत्कृष्ट ज्ञान की ज्योतिवाला तथा **अमवान्**=बलवाला होता हुआ **द्यून् भूषति**=अपने जीवन के दिनों को भूषित करता है।

भावार्थ—हम उस शक्तिपुञ्ज प्रभु की सुमति का प्रसार करते हुए कीर्तिमय जीवनवाले हों। प्रभु-प्रेरणा के अनुसार कार्यों को करते हुए 'द्युमान् व अमवान्' बनें—ज्योतिर्मय व शक्तिशाली।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-प्रेरणा

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः॥ २५॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि—हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **सदने**=इस शरीररूप गृह में **सधस्थे**=मिलकर बैठने के स्थान इस हृदय में **नः श्रुधी**=हमारी बात को सुन। हृदयस्थ प्रभु जीव को सदा प्रेरणा देते हैं। जीव को चाहिए कि उस प्रेरणा को सुने। प्रेरणा देते हुए प्रभु कहते हैं कि **रथं युक्ष्व**=तू इस शरीर-रथ को जोत। यह खड़ा ही न रह जाए, अर्थात् तू सदा क्रियाशील बन। **अमृतस्य द्रवित्नुम्**=यह तेरा रथ अमृत का द्रावक हो, अर्थात् तू सदा मधुर शब्दों को ही बोलनेवाला हो। तेरा सारा व्यवहार ही मधुर हो। २. **नः**=हमसे दिये गये **रोदसी**=इन द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को **आवह**=सब प्रकार से धारण करनेवाला हो। तेरा शरीर स्वस्थ हो और मस्तिष्क दीप्त हो। ये **देवपुत्रे**=दिव्यगुणों के द्वारा अपने को पवित्र रखनेवाले (पु) व अपने को सुरक्षित करनेवाले (त्र) हों (देवैः पुनीतः त्रायते च)। **इह**=इस जीवन में **देवानाम्**=दिव्यगुण-सम्पन्न विद्वानों का **अपभूः**=निरादर करनेवाला **माकिः स्याः**=मत हो। सदा उनके संग में उत्तम प्रेरणा के द्वारा अपने जीवन को पवित्र करनेवाला हो।

भावार्थ—हम प्रभु की प्रेरणा को सुनें। क्रियाशील बनें। वाणी व सब व्यवहार को मधुर बनाएँ। शरीर को स्वस्थ व मस्तिष्क को दीप्त रक्खें। सदा सत्संग की रुचिवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

समिति=मेल

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात्॥ २६॥

१. हे **अग्ने**=हमारी उन्नतियों के साधक प्रभो! **यजत्र**=(यज्ञ सङ्गति) मेल के द्वारा हमारा त्राण करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब **एषा**=यह **समितिः**=मेल **भवाति**=होता है, अर्थात् जब हम परस्पर मिलकर चलते हैं तब यह मिलकर चलना **देवी**=(दिव् विजिगीषायाम्) हमारी सब बुराइयों को जीतने की कामनावाला होता है। यह मेल **देवषु**=देवपुरुषों में सदा निवास करता है। **यजता**=यह मेल हमें एक-दूसरे का आदर करना सिखाता है (यज् पूजायाम्)। हम परस्पर प्रेमभाववाले होते हैं २. **च**=और हे **स्वधावः**=आत्मतत्त्व का शोधन करनेवाले प्रभो! **यत्**=जब आप हमें **रत्ना विभजासि**=उत्तमोत्तम रमणीय वस्तुओं को प्राप्त कराते हैं तब **नः**=हमें **अत्र**=इस मानव-जीवन में **वसुमन्तम्**=उत्तम निवास को देनेवाले **भागम्**=भजनीय धनों को **वीतात्** **(आगमय)**=प्राप्त कराइए।

भावार्थ—हम परस्पर मेलवाले हों और इससे हमारा निवास सब प्रकार से उत्तम हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश॥ २७॥

१. गतमन्त्र के अनुसार हम अपने निवास को उत्तम बनाने के लिए प्रभु का स्मरण करें कि **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **उषसाम् अग्रम्**=उषाकालों के पूर्वभाग को **अनु अख्यत्**=क्रम से

प्रकाशित करते हैं। वही **जातवेदः**=सर्वज्ञ व सर्वव्यापक **(जातं जातं वेत्ति, जाते जाते विद्यते)** **प्रथमः**=सबके आदिमूल प्रभु **अहानि**=दिनों को **अनु (अख्यत्)**=प्रकट करते हैं। २. वे प्रभु ही **सूर्यं अनु**=सूर्य को प्रकाशित करते हैं, **उषसः अनु**=उषाकालों को प्रकाशित करते हैं, **रश्मीन्**=सब प्रकाशमय किरणों को **अनु (अख्यत्)**=प्रकाशित करते हैं। वे प्रभु ही **द्यावापृथिवी आविवेश**=द्यावापृथिवी में प्रविष्ट हो रहे हैं। अपने प्रवेश से ही वे इन्हें दीप्त व दृढ़ बनाते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही उषाकालों में, दिनों में, सूर्य में व रश्मिमात्र में दीप्त हो रहे हैं, द्यावापृथिवी में प्रविष्ट होकर प्रभु ही इन्हें दीप्त व दृढ़ बना रहे हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सर्वनिर्माता' प्रभु

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत्प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन्प्रति द्यावापृथिवी आ ततान॥ २८॥

१. **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु ही **उषसाम् अग्रम् प्रति अख्यत्**=उषाओं के अग्रभाग को प्रतिदिन प्रकाशित करते हैं। वे ही **जातवेदाः**=सर्वज्ञ व सर्वव्यापक **प्रथमः**=सबके आदिमूल प्रभु **अहानि**=दिनों को **प्रति (अख्यत्)**=प्रकाशित करते हैं २. **च**=और वे प्रभु ही **सूर्यस्य**=सूर्य की **पुरुधा**=अनेक प्रकार की—सात रंगोंवाली **रश्मीन्**=किरणों को **प्रति** (अख्यत्)=प्रतिदिन प्रकाशित करते हैं। **द्यावापृथिवी प्रति आततान**=द्यावापृथिवी को प्रत्येक सृष्टि में वे प्रभु ही विस्तृत करते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सूर्य-किरणों द्वारा सबका धारण करते हैं। वे ही द्यावापृथिवी को विस्तृत करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

द्यावाक्षामा के लिए सत्य व ऋत का पालन

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन्॥ २९॥

१. अध्यात्म में **द्यावाक्षामा**='द्युलोक व पृथिवीलोक' का अभिप्राय मस्तिष्क व शरीर है। ये मस्तिष्क और शरीर **ह**=निश्चय से **प्रथमे**=मानव-जीवन में प्रथम स्थान में हैं। मनुष्य का मौलिक कर्त्तव्य यही है कि वह मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयत्न करे। इनका ध्यान न करके रुपया कमाने व यश प्राप्त करने (वाहवाही लूटने) में न लगा रहे। ये मस्तिष्क व शरीर **ऋतेन**=ऋत से—प्रत्येक कार्य को ठीक समय पर करने से तथा **सत्यवाचा**=सत्य वाणी से, अर्थात् असत्य को सदा अपने से दूर रखने से **अभिश्रावे भवतः**=सदा अन्दर व बाहर घर में व समाज में प्रशंसनीय होते हैं। ऋत से—सब कार्यों को ठीक समय पर करने से—शरीर ठीक रहता है। सत्य से मस्तिष्क पवित्र बना रहता है। (सत्यं पुनातु पुनः शिरसि)। २. स्वस्थ शरीर व मस्तिष्कवाले बनकर हम प्रभु के प्रिय होते हैं। वे **देवः**=प्रकाशमय प्रभु **यत्**=जब **मर्तान्**=हम मनुष्यों को **यजथाय**=अपने साथ सम्पर्क के लिए **कृण्वन्**=करते हैं, तब वे प्रभु **प्रत्यङ् सीदत्**=हमारे अन्दर ही हृदयान्तरिक्ष में विराजते हुए **होता**=हमें सब आवश्यक पदार्थों को देनेवाले होते हुए **स्वम् असुम्**=अपनी प्राणशक्ति को **यन्**=प्राप्त कराते हैं। प्रभु से प्राणशक्ति व तेज के अंश को प्राप्त करके वे लोग प्रभु-जैसे ही प्रतीत होने लगते हैं। ये अतिमानव प्रतीत

होते हैं।

भावार्थ—हम ऋत व सत्य के द्वारा शरीर को दृढ़ व मस्तिष्क को उज्ज्वल बनाएँ। प्रभु के प्रिय बनकर—प्रभुसम्पर्क में आकर अन्दर स्थित प्रभु की शक्ति से शक्तिसम्पन्न हों। यही हमारा मौलिक कर्त्तव्य है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रथमः चिकित्वान्

दे॒वो दे॒वान्प॑रि॒भूर्ऋ॒तेन॒ वहा॑ नो ह॒व्यं प्र॑थ॒मश्चि॑कि॒त्वान्।
धू॒मके॑तुः स॒मिधा॒ भाऋ॑जीको म॒न्द्रो होता॒ नित्यो॑ वा॒चा यजी॑यान्॥ ३०॥

१. प्रभु ऋत व सत्य का पालन करनेवाले जीव से कहते हैं कि **देवः**=देववृत्तिवाला तू **ऋतेन**=यज्ञ के पालन से **देवान् परिभूः**=सब दिव्यगुणों को शरीर में चतुर्दिक् भावित करनेवाला हो। तेरे शरीर में यथास्थान उस-उस देवता की स्थिति हो। तू **प्रथमः**=शरीर व मस्तिष्क को उत्तम बनानेवालों में सर्वाग्रणी व **चिकित्वान्**=समझदार होता हुआ **नः**=हमारे **हव्यम्**=हव्य को **वहा**=वहन करनेवाला हो, अर्थात् तेरा जीवन यज्ञमय हो—तू सदा यज्ञशेष का सेवन करनेवाला बन। २. **धूमकेतुः**=ज्ञान के द्वारा वासनाओं को कम्पित करके अपने से दूर करनेवाला तू बन। **समिधा भाऋजीकः**=ज्ञान की दीप्ति से दीप्ति का अर्जन करनेवाला तू हो। **मन्द्रः**=तेरा जीवन सदा प्रसन्नतापूर्ण हो। **नित्यः होता**=तू सदा देनेवाला बन। जितना हम देते हैं—त्याग करते हैं, उतना ही तो जीवन आनन्दमय बनता है। **वाचा यजीयान्**=ज्ञान की वाणी से तू उस प्रभु का पूजन करनेवाला बन। अथवा ज्ञान की वाणियों से संग करनेवाला बन—सदा स्वाध्यायशील हो।

भावार्थ—प्रभु का आदेश है कि हे जीव! तू दिव्यगुणों को धारण कर, यज्ञशील हो, ज्ञान के द्वारा वासनाओं को कम्पित करनेवाला हो, ऋजु, दीप्त, सदा प्रसन्न, नित्य होता व स्वाध्यायशील बन।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

द्यावाभूमि का माधुर्य

अर्चा॑मि वां॒ वर्धा॒यापो॑ घृतस्नू॒ द्यावा॑भूमी शृणु॒तं रो॑दसी मे।
अहा॒ यद्दे॒वा असु॑नीति॒माय॒न्मध्वा॑ नो॒ अत्र॑ पि॒तरा॑ शिशीताम्॥ ३१॥

१. **अपः वर्धाय**=कर्मों के वर्धन के लिए **वाम्**=आप दोनों—द्युलोक व पृथिवीलोक (मस्तिष्क व शरीर) को **अर्चामि**=पूजित करता हूँ। मेरा मस्तिष्क व शरीर **घृतस्नू**=घृत का धारण करनेवाले हों। मस्तिष्क में ज्ञान की दीप्ति हो (घृत-दीप्ति) और शरीर से मलों का क्षरण हो जाए (घृ क्षरणे)। **मे द्यावाभूमि**=मेरा ज्ञानदीप्त मस्तिष्क तथा क्षरित मलोंवाला शरीर **रोदसी**=(क्रन्दसी) प्रभु का आह्वान करनेवाले होते हुए **शृणुतम्**=प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाले बनें। २. **यत्**=जब **देवाः**=ज्ञानी स्तोता (दिव द्युतौ-स्तुतौ) **अहा**=प्रतिदिन **असुनीतिम् आयन्**=प्राणों के मार्ग पर चलते हैं, अर्थात् प्राणसाधना द्वारा प्राणशक्ति का वर्धन करते हैं तब **अत्र**=इस जीवन में **नः**=हमें **पितरा**=द्यावापृथिवी (मस्तिष्क व शरीर) **मध्वा**=माधुर्य से **शिशीताम्**=संस्कृत कर दें। हमारी प्रत्येक क्रिया माधुर्यपूर्ण हो, हमारा ज्ञान भी मधुरता से औरों तक पहुँचाया जाए। वस्तुतः द्यावाभूमी का माधुर्य से पूर्ण होना ही जीवन के विकास की पराकाष्ठा है। इनको ऐसा बनाना ही इनका अर्चन है।

भावार्थ—हमारे मस्तिष्क व शरीर ज्ञानदीप्त व निर्मल हों। हम प्राणरक्षण के मार्ग से चलें तथा अपने को मधुर बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'गोदुग्ध व वानस्पतिक भोजन' का सेवन

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी।
विश्वेदेवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः॥ ३२॥

१. मनुष्य **देवस्य**=दिव्यगुणों के पुञ्ज प्रभु का **स्वावृक् (सु आवृज्)**=उत्तमता से आवर्जन करनेवाला होता है। एक मनुष्य का झुकाव प्रभु की ओर होता है **यत्**=जब **ई**=निश्चय से **गोः अमृतम्**=गौ का अमृत-तुल्य दुग्ध तथा **अतः जातासः**=इस पृथिवी से उत्पन्न वानस्पतिक पदार्थ (गौ भूमिः) **उर्वी**=इन द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को **धारयन्त**=धारण करते हैं, अर्थात् जब एक मनुष्य गोदुग्ध व वानस्पतिक भोजनों का सेवन करता है तब उसका शरीर व मस्तिष्क दोनों बड़े उत्तम बनते हैं और इस मनुष्य का झुकाव प्राकृतिक भोगों की ओर न होकर प्रभु की ओर होता है। २. **तत्**=तब **विश्वेदेवाः**=सब दिव्यगुण **ते यजुः**=तेरे सम्पर्क को (यज् संगतिकरणे) **अनु गुः**=अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। प्रभु की ओर झुकाव होने पर दिव्यगुण प्राप्त होते हैं, **यत्**=क्योंकि **एनी**=यह श्वेत—शुद्ध-वेदवाणी **दिव्यम्**=अलौकिक-उत्कृष्टतम **घृतम्**=ज्ञानदीप्ति को तथा **वाः (वार्)**=रोगों के निवारण को **दुहे**=पूरित करती है। वेदवाणी ज्ञान को तो प्राप्त कराती ही है, यह मनुष्य की वृत्ति को सुन्दर बनाकर, उसे वासनाओं से ऊपर उठाकर, नीरोग भी बनाती है। यह वरदा वेदमाता 'आयुः प्राणं' आयुष्य व प्राण को देनेवाली तो है ही।

भावार्थ—जब गोदुग्ध व वानस्पतिक भोजन हमारे शरीर व मस्तिष्क को धारण करते हैं तब हमारा झुकाव प्रभु की ओर होता है। उस समय हमें दिव्यगुण प्राप्त होते हैं और ज्ञान की वाणी हमें ज्ञानदीप्ति व नीरोगता प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यशोबलम् (श्लोकः-वाजः)

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति॥ ३३॥

१. यह **राजा**=देदीप्यमान (राज् दीप्तौ) ब्रह्माण्ड का शासक (Regulate करनेवाला) **किंस्वित्**=भला क्या **नः**=हमारा **जगृहे**=ग्रहण करेगा! जैसे पिता पुत्र को गोद में लेता है, उसी प्रकार क्या वे प्रभु हमें गोद में लेंगे? **कत्**=कब **अस्य**=इस प्रभु के **अतिव्रतं चकृम**=तीव्र व्रतों को हम कर पाएँगे, अर्थात् उस पिता प्रभु की प्राप्ति के लिए साधनाभूत महान् यम-नियम आदि व्रतों को हम कब पूर्ण तथा पालन कर सकेंगे? इन बातों को **कः विवेद**=वे अनिर्वचनीय प्रभु ही जानते हैं। 'हमारे कर्म प्रभु-प्राप्ति के योग्य कब होंगे?' यह बात तो प्रभु के ही ज्ञान का विषय हो सकती है। ज्यों ही हमारे कर्म उस योग्यता के होंगे, त्यों ही प्रभु हमें अपनी गोद में अवश्य ग्रहण करेंगे। २. वे प्रभु **चित् हि ष्मा**=निश्चय से **मित्रः**=मृत्यु व रोगों से बचानेवाले हैं (प्रमीतेः त्रयाते) और **देवान्**=देववृत्तिवाले लोगों को **जुहुराणः**=स्नेहपूर्वक अपने समीप बुलानेवाले हैं (स्निग्धम् आह्लादयमानः—सा०)। जब हम देव बनते हैं तब हमें उस पिता का स्नेह प्राप्त होता ही है। देव बनने के इस मार्ग पर चलने पर **न** (संप्रति)=अब भी **याताम्**=गतिशील हम लोगों का **श्लोकः**=यश और **वाजः अपि**=बल भी **अस्ति**=होता ही है। इस यशस्वी बल

के द्वारा आगे बढ़ते हुए हम देव बनते हैं और देव बनकर महादेव की गोद में आसीन होते हैं।

भावार्थ—हम देव बनकर प्रभु के स्नेह के पात्र हों। गतिशील बनकर यशस्वी बलवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

नाम-स्मरण की दुष्करता

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन्॥ ३४॥

१. प्रभु को भूल गये तो प्रभु को क्या प्राप्त करेंगे, अतः प्रभु-स्मरण आवश्यक है। यह बात भी ठीक है कि **अत्र**=यहाँ—इस संसार में **अमृतस्य नाम**=अविनाशी प्रभु का नाम **दुर्मन्तु**=स्मरण करना कठिन है, **यत्**=क्योंकि **सलक्ष्मा**=यह उत्तम लक्षणोंवाली (लक्ष्मभिः सहिता) प्रकृति **विषुरूपा भवाति**=विविध सुन्दर रूपोंवाली होती है। यह हिरण्मयी प्रकृति हमारे ध्यान को आकृष्ट करके हमें प्रभु से दूर ले-जाती है। २. **यः**=जो मनुष्य **यमस्य**=उस नियन्ता प्रभु के **सुमन्तु**=उत्तम मननयोग्य नाम का **मनवते**=मनन करता है, **अग्ने**=हे अग्रणी! **ऋष्व**=दर्शनीय व जानने योग्य प्रभो! **तम्**=उस नामस्मरण करनेवाले को **अप्रयुच्छन्**=प्रमादरहित होते हुए आप **पाहि**=रक्षित करते हो। यह स्तोता अवश्य आपकी रक्षा का पात्र होता है।

भावार्थ—प्रकृति की चमक के कारण यहाँ—इस संसार में मनुष्य प्रभु को भूल जाता है, प्रभु-नामस्मरण से दूर हो जाता है, परन्तु जब भी हम उस प्रभु के नाम का स्मरण कर पाते हैं तब प्रभु के द्वारा रक्षणीय होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

क्रियाशीलता व ज्ञान की उपासना

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा॥ ३५॥

१. प्रभु की रक्षा प्राप्त करनेवाले **देवाः**=देववृत्ति के लोग **यस्मिन्**=जिस समय, प्रभु की गोद में रहते हुए **विदथे मादयन्ते**=ज्ञानयज्ञों में हर्ष का अनुभव करते हैं, अर्थात् सदा ज्ञानप्रधान जीवन बिताते हैं तब **विवस्वतः**=सूर्य के **सदने**=निवासस्थान द्युलोक में **धारयन्ते**=अपना धारण करते हैं। ये मस्तिष्क प्रधान (Sensible) बनते हैं—शरीर में मस्तिष्क ही तो द्युलोक है। २. **सूर्ये**=(सूर्यश्चक्षुर्भूत्वा०) अपनी आँखों में **ज्योतिः अदधुः**=प्रकाश को धारण करते हैं—इनकी आँखों में सदा चमक होती है। **मासि (चन्द्रमा मनो भूत्वा, मास् moon)**=अपने मनों में **अक्तून्**=प्रकाश की किरणों को धारण करते हैं, अर्थात् हृदयस्थ प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। इसप्रकार की वृत्तिवाले पति-पत्नी **अजस्रा** (अ-जस्)=सदा कर्मों को करनेवाले **द्योतनिम्**=ज्ञान की ज्योति का **परिचरतः**=सदा उपासन करते हैं। इसप्रकार आदर्श गृहस्थ 'निरन्तर क्रियाशील व ज्ञान के उपासक' होते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञानयज्ञों में आनन्द लें, सदा समझदारी से चलें। हमारी आँखों में ज्योति हो और मन में आह्लाद। हम क्रियाशील हों और ज्ञान के उपासक बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

निष्पापता व प्रभुदर्शन

यस्मिन्देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्येऽ न वयमस्य विद्म।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत्॥ ३६॥

१. **यस्मिन्**=जिस परमात्मा की उपासना होने पर **देवाः**=देववृत्ति के लोग **मन्मनि**=उस ज्ञानस्वरूप प्रभु में **संचरन्ति**=विचरते हैं, जो प्रभु **अपीच्ये**=अन्तर्हित हैं—हृदयरूप गुहा में स्थित होते हुए भी हमारे ज्ञान का विषय नहीं बनते। **वयम्**=हम **अस्य न विद्म**=इस प्रभु के स्वरूप को नहीं जानते। हृदय में होते हुए भी वे हमारे लिए अचिन्त्य ही बने रहते हैं। २. ये प्रभु **नः मित्रः**=हमारे मित्र हैं, **अदितिः**=अपने उपासक के स्वास्थ्य को न नष्ट होने देनेवाले हैं। (अविद्यमाना दितिर्यस्मात्)। मित्ररूप में वे प्रभु हमें पापों से बचाते हैं तो अदिति के रूप में रोगों से। ये **सविता**=सब प्रेरणओं को देनेवाले **देवः**=ज्ञानप्रकाश के पुञ्ज प्रभु **अनागान्**=निरपराध जीवनवाले हम लोगों को **वरुणाय वोचत्**=द्वेषनिवारण के लिए उपदेश देते हैं। द्वेषशून्यता होने पर प्रभु-साक्षात्कार सम्भव होता है।

भावार्थ—प्रभु हमारे मित्र हैं। निर्द्वेषता से ही हम इस मित्र का साक्षात्कार कर पाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**परोष्णिक्**॥

'इन्द्र-वज्री-नृतम-धृष्णु' प्रभु का स्तवन

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे॥ ३७॥

१. **सखायः**=हे मित्रो! हम **इन्द्राय**=सब शत्रओं का विद्रावण करनेवाले, **वज्रिणे**=वज्रहस्त अथवा (वज् गतौ) सब गतियों के देनेवाले, **नृतमाय**=(नेतृ-तमाय) सर्वोत्तम नेता **धृष्णवे**=शत्रुओं का धर्षण करनेवाले—शत्रुओं को कुचल देनेवाले प्रभु के लिए **स्तुषे**=(स्तोतुम् सा०) स्तवन करने के लिए **उ**=निश्चय से **ब्रह्म**=(वेद) ज्ञान को **सु आशिषामहे**=अच्छी प्रकार चाहते हैं। २. ज्ञान प्राप्त करके इन वेदवाणियों के द्वारा हम प्रभु का शंसन करते हैं। यह प्रभु-स्तवन हमें जितेन्द्रिय (इन्द्राय) गतिशील (वज्रिणे) आगे और आगे बढ़नेवाला (नृतमाय) तथा शत्रुओं को कुचल देनेवाला बनाता है (धृष्णवे)।

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा प्रभु-स्तवन करते हुए हम जितेन्द्रिय, गतिशील प्रगतिवाले व शत्रु को कुचलनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पुरोष्णिक्**॥

शवसा+मघैः

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा। मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि॥ ३८॥

१. हे **शूर**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले प्रभो! आप **हि**=निश्चय से **शवसा**=बल से **श्रुतः असि**=प्रसिद्ध हैं। सर्वशक्तिमान् हैं। **वृत्रहत्येन**=हमारे सबसे महान् शत्रु वृत्र का—ज्ञान की आवरणभूत कामवासना का विनाश करने से आप **वृत्र-हा**=वृत्र का हनन करनेवाले कहलाये हैं। २. हे शूर! आप **मघैः**=अपने ऐश्वर्यों के द्वारा **मघोनः अति**=सब ऐश्वर्य-सम्पन्नों को लाँघकर **दाशसि**=देनेवाले हैं। आप के समान अन्य कोई दाता नहीं है।

भावार्थ—सर्वशक्तिमान् प्रभु हमारे प्रबलतम वासनारूप शत्रुओं का विनाश करते हैं। वे परमैश्वर्यशाली प्रभु ही सर्वमहान् दाता हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

हृदय में प्रभु का उपासन व दीप्त जीवन

स्तेगो न क्षामत्यैषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम्॥ ३९॥

१. **स्तेगः**=(स्त्यायते Spread about) हे प्रभो! चारों ओर व्याप्त होते हुए आप इस **क्षाम्** (**क्षि=निवासे**)=हमारी निवासस्थानभूत **पृथिवीम्**=शरीररूप पृथिवी को **न अति एषि**=कभी लाँघकर नहीं जाते हो। आपका सर्वश्रेष्ठ निवासस्थान (परम व्योम) हमारा हृदय ही होता है। हम सदा हृदय में आपका स्मरण करें। ऐसा करने पर **इह भूमौ**=यहाँ पृथिवी पर **नः**=हमारे लिए **मही वातः**=महत्त्वपूर्ण—हमें शक्ति देनेवाली वायुएँ **वान्तु**=बहें। हमारे लिए सारा वातावरण बड़ा अनुकूल हो। २. **मित्रः**=वह सबके प्रति स्नेह करनेवाला, **वरुणः**=द्वेष का निवारण करनेवाला प्रभु **युज्यमानः**=योग द्वारा सम्पृक्त होता हुआ **अत्र**=यहाँ—इस जीवन में **नः**=हमारे लिए **शोकम्**=दीप्ति को **व्यसृष्ट**=विशेषरूप से उत्पन्न करता है, उसीप्रकार **न**=जैसेकि (न=इव) **अग्निः वने**=अग्नि वन में वनाग्नि को उत्पन्न करके विशिष्ट दीप्ति उत्पन्न करता है।

भावार्थ—सर्वव्यापक होते हुए भी प्रभु हमारे हृदयों में विशेषरूप से उपासनीय होते हैं। उस समय हमारा सारा वातावरण बड़ा सुन्दर बनता है। प्रभु का उपासक जब स्नेह व निर्द्वेषतावाला बनता है तब उसका हृदय प्रभु-दीप्ति से दीप्त हो उठता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, रुद्रः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु-स्तवन व प्रभु का अनुग्रह

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत्ते नि वपन्तु सेन्यम्॥ ४०॥

१. हे जीव! तू **स्तुहि**=उस प्रभु का स्तवन कर जोकि **श्रुतम्**=वेदवाणियों में सर्वत्र सुनने योग्य हैं (सर्वे वेदाः यत् पदमामनन्ति०) **गर्तसदम्**=जो हृदयरूप गुहा में आसीन हैं। **जनानां राजानम्**=सब उत्पन्न होनेवाले लोगों के शासक हैं (इन्द्रो विश्वस्य राजति) **उपहत्नुम्**=सब दुष्टों को विनष्ट करनेवाले हैं। **भीमम्**=शत्रुओं के लिए भयंकर हैं। **उग्रम्**=अत्यन्त तेजस्वी हैं। २. हे **रुद्र**=दुष्टों को रुलानेवाले प्रभो! **स्तवानः**=स्तुति किये जाते हुए आप **जरित्रे**=स्तोता के लिए **मृड**=सुख देनेवाले होइए। हे प्रभो! **ते**=आपकी **सेन्यम्**=सेनाएँ **अस्मत् अन्यम्**=हम स्तोताओं से भिन्न पुरुषों को **निवपन्तु**=काटनेवाली हैं। सब आधिदैविक शक्तियाँ ही प्रभु की सेनाएँ हैं। नास्तिक व्यक्ति प्रभु की उपासना से दूर होकर इन शक्तियों की प्रतिकूलता के कारण रोग आदि का शिकार हो जाते हैं। उपासक के लिए ही 'द्युलोक, अन्तरिक्षलोक व पृथिवीलोक' शान्ति देनेवाले होते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का स्तवन करें। यह प्रभु-स्तवन हमें उचित प्रेरणा व शक्ति प्राप्त कराएगा। इससे हम स्वधर्म का पालन करते हुए प्रभु के सच्चे उपासक होंगे और सब कष्टों से बचे रहेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, सरस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सरस्वती की आराधना

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥ ४१॥

१. **देवयन्तः**=दिव्यगुणों की प्राप्ति की कामनावाले और उनके द्वारा उस महान् देव प्रभु की प्राप्ति की कामनावाले पुरुष **सरस्वतीं हवन्ते**=विद्या की अधिष्ठात्री देवता को पुकारते हैं, अर्थात् ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्नशील होते हैं। यह ज्ञान ही उनके जीवन को पवित्र व दिव्यगुण-सम्पन्न बनाकर उन्हें प्रभु-प्राप्ति के योग्य बनाएगा। २. **तायमाने अध्वरे**=विस्तृत किये जाते हुए यज्ञ के निमित्त **सरस्वतीम्**=सरस्वती को ही पुकारते हैं। वस्तुतः यह ज्ञान ही हमारे जीवनों को यज्ञमय बनाता है। सब **सुकृतः**=शुभ कर्मों को करनेवाले लोग इस **सरस्वतीं हवन्ते**=सरस्वती को पुकारते हैं। यह ज्ञान की आराधना ही तो उन्हें सब दुर्व्यसनों से बचाकर शुभ कर्मों में प्रवृत्त करती है। ३. वस्तुतः **सरस्वती**=यह ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता **दाशुषे**=दाश्वान् के लिए—आत्मार्पण करनेवाले व्यक्ति के लिए सब **वार्यम्**=वरणीय वस्तुओं को **दात्**=देती है। ज्ञान की आराधना हमारे जीवन में सब शुभों को प्राप्त कराती है।

भावार्थ—सरस्वती का आराधन, अर्थात् ज्ञानप्राप्ति की लगन हमें दिव्यगुणसम्पन्न बनाकर प्रभु-प्राप्ति के योग्य बनाती है (देवयन्तः)। यह हमें यज्ञशील बनाती है (अध्वरे) पुण्य कर्मों में प्रवृत्त करती है (सुकृतः) और सब शुभों को प्राप्त कराती है (वार्यं दात्)।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, सरस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सरस्वती की आराधना का फल

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे॥ ४२॥

१. **सरस्वतीम्**=इस ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता को **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में व्यापृत पिता **हवन्ते**=पुकारते हैं। यह ज्ञानरुचि ही उन्हें पवित्र जीवनवाला बनाकर अपने कार्य को सुचारु रूप से करने में समर्थ करती है। **दक्षिणा**=(दक्ष् to grow) उन्नति व विकास के हेतु से **यज्ञम् अभिनक्षमाणाः**=(यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म) श्रेष्ठतम कर्मों को प्राप्त होते हुए लोग इस सरस्वती को ही पुकारते हैं। सरस्वती ही तो उन्हें इन यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त करके उन्नत करती है। २. हे पुरुषो! तुम **अस्मिन् बर्हिषि**=(बृहि वृद्धौ) इस वृद्धि के निमित्तभूत सरस्वती के आराधन में **आसद्य**=आसीन होकर **मादयध्वम्**=आनन्द का अनुभव करो। स्वाध्याय में तुम्हें रस की प्रतीति हो। हे सरस्वति! तू **अस्मे**=हमारे लिए **अनमीवाः**=व्याधिरहित **इषः**=अन्नों को **आधेहि**=स्थापित कर। राजस् अन्न (दुःखशोकामयप्रदाः) ही रोगों का कारण बनते हैं। उन्हें न ग्रहण करके हम सात्त्विक अन्नों का ही सेवन करें। यह सात्त्विक अन्न का सेवन हमारी बुद्धि की वृद्धि करता हुआ हमें और अधिक सरस्वती का आराधक बनाएगा।

भावार्थ—सरस्वती की आराधना हमें रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त करती है (पितरः), यह हमें श्रेष्ठतम कर्मों की ओर ले-जाती है (यज्ञम्), यही वृद्धि का निमित्त बनती है (बर्हिषि), अतः हम सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हुए तीव्र बुद्धि बनें और सरस्वती के आराधक हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, सरस्वती**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सरस्वती का आराधक

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥ ४३॥

१. हे **सरस्वति**=ज्ञान की अधिष्ठात्री देवते! **यः**=जो तू **उक्थैः**=स्तोत्रों के साथ **सरथं ययाथ**=समान रथ में—एक ही शरीररूप रथ में गतिवाली होती है। हे **देवि**=जीवन को

प्रकाशमय बनानेवाली! तू **स्वधाभिः**=(स्व-धा) आत्मधारण-शक्तियों के साथ **पितृभिः**=तथा रक्षणात्मक कार्यों में व्यापृत लोगों के साथ **मदन्ती**=आनन्द का अनुभव करती है। ज्ञानी पुरुष अवश्य (क) प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाला बनता है (उक्थैः)। (ख) यह आत्मशक्ति को धारण करता है (स्वधाभिः)। (ग) पालनात्मक कार्यों में व्यापृत होता है (पितृभिः)। २. हे सरस्वति! तू **अत्र**=इस हमारे जीवन में **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए (यज्ञ—पूजा, संगतिकरण, दान) तेरा पूजन करनेवाले, तेरा संग करनेवाले व तेरे प्रति अपने को दे डालनेवाले के लिए **सहस्त्रार्घम्**=अनन्त मूल्यवाले—अमूल्य इस **इडः भागम्**=ज्ञान की वाणी के भजनीयांश को तथा **रायस्पोषम्**=जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक धन का पोषण **धेहि**=धारण कर।

भावार्थ—सरस्वती का आराधक (१) प्रभुभक्त बनता है, (२) आत्मशक्ति का धारण करता है, (३) रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता है (४) वेदवाणी का अमूल्य ज्ञानधन प्राप्त करता है और (५) आवश्यक धन का पोषक होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, पितरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अवर, पर व मध्यम' पितर

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥ ४४॥

१. हमारे जीवनों में **अवरे पितरः**=सबसे प्रथम स्थान में प्राप्त होनेवाले माता-पितारूप पितर **उदीरताम्**=उत्कृष्ट गतिवाले हों। वे हमारे जीवनों में चरित्र व शिष्टाचार की स्थापना के लिए यत्नशील हों। **उत्**=और **मध्यमाः**=मध्यम श्रेणी के पितर, अर्थात् हमारे जीवनों के मध्यकाल में शिक्षा के द्वारा हमारे ज्ञान को बढ़ानेवाले आचार्य (उदीरताम्) ज्ञानप्रदान की क्रिया में सदा सचेष्ट हों। **उत्**=और **परासः**=जीवन के परभाग में हमारे घरों में प्राप्त होनेवाले अतिथिरूप पितर सदा सत्प्रेरणा देते हुए (उदीरताम्) उत्कृष्ट गतिवाले हों। उपनिषद् के 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव' इन शब्दों में इन्हीं पितरों का उल्लेख हुआ है। २. ये सब पितर **सोम्यासः**=अत्यन्त सोम्य स्वभाव के हों, स्वयं सौम्य होते हुए ही ये हमें सौम्य बना सकेंगे। पितर वे हैं **ये**=जो **असुम् ईयुः**=प्राणशक्ति को प्राप्त करते हैं—प्राणसाधना द्वारा जीवनशक्ति से पूरिपूर्ण हैं। **अवृकाः**=लोभ से रहित हैं। **ऋतज्ञाः**=ऋत को जाननेवाले हैं—यज्ञशील हैं (ऋत=यज्ञ)। **ते**=वे पितर **नः**=हमें **हवेषु**=पुकारे जाने पर **अवन्तु**=हमारा रक्षण करनेवाले हैं—अपनी सत्प्रेरणाओं द्वारा हमें प्रीणित करनेवाले हैं।

भावार्थ—सौम्य-प्राणशक्तिसम्पन्न-निर्लोभ व यज्ञशील पितर हमारे जीवनों में हमारा रक्षण करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, पितरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सुविदत्र और बर्हिषद्' पितर

आहं पितृन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः॥ ४५॥

१. **अहम्**=मैं **सुविदत्रान्**=उत्तम ज्ञान के द्वारा रक्षण करनेवाले **पितृन्**=पितरों को **आ अवित्सि**=सर्वथा प्राप्त होऊँ। माता-पिता, आचार्य व अतिथि—ये सब ज्ञान के द्वारा हमारा रक्षण करनेवाले हों **च**=और परिणामतः मैं **न-पातम्**=न गिरने को, अर्थात् धर्ममार्ग में स्थिरता को, प्राप्त करूँ **च**=तथा **विष्णोः विक्रमणम्**=विष्णु के विक्रमण को भी मैं प्राप्त करूँ, अर्थात् विष्णु

ने जैसे तीन पगों में त्रिलोकी को व्याप्त किया हुआ है, उसी प्रकार मैं भी त्रिलोकी का विजेता बनूँ, अर्थात् 'स्वस्थ शरीर, निर्मल मन व दीप्त मस्तिष्क' वाला होऊँ। २. मैं उन पितरों को प्राप्त करूँ ये जो **बर्हिषदः**=यज्ञों में आसीन होनेवाले हैं और **स्वधया**=प्राणशक्ति के धारण के हेतु से **पित्वः**=अन्न के **सुतस्य**=परिणामभूत (उत्पन्न) सोम का **भजन्त**=सेवन करते हैं, अर्थात् इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखते हैं। इस वीर्यरक्षण के द्वारा ही वे दीप्त ज्ञानाग्निवाले बनकर आत्मतत्त्व का धारण करनेवाले बनते हैं। **ते**=वे पितर **इह आगमिष्ठाः**=इस जीवन में हमें प्राप्त हों।

भावार्थ—हमें उन पितरों की प्राप्ति हो जो ज्ञान के द्वारा हमारा रक्षण करें, यज्ञशील हों, प्रभु-प्राप्ति के उद्देश्य से (आत्मशक्ति के धारण के उद्देश्य से) वीर्य का रक्षण करनेवाले हों। इनके सम्पर्क से हम भी मार्गभ्रष्ट न होकर शरीर, मन व मस्तिष्क की उन्नतिरूप तीन पगों को रखनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, पितरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पितरों का आदर

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु॥ ४६॥

१. **इदम्**=यह **अद्य**=आज **पितृभ्यः**=उन सब पितरों के लिए **नमः अस्तु**=नमस्कार हो। हम उन सब पितरों के लिए आदर का भाव धारण करते हैं, **ये**=जो **पूर्वासः**=हमारे जीवनों में सर्वप्रथम 'माता-पिता' के रूप में **ईयुः**=आते हैं और **ये**=जो **अपरास**=अपर काल में (पीछे) आचार्यों व अतिथियों के रूप में आते हैं। २. उन पितरों के लिए हम आदर का भाव धारण करते हैं **ये**=जो **पार्थिवे रजसि**=इस पार्थिवलोक में—शरीर में **आ-निषत्ताः**=समन्तात् निषण्ण हैं, अर्थात् जिनका शरीर पर पूर्ण प्रभाव है, **वा**=तथा **ये**=जो **नूनम्**=निश्चय से **सुवृजनासु**=(वृजन Strenght, power) उत्तम शक्तिवाली **दिक्षु**=दिशाओं में चल रहे हैं। अपने पर पूर्ण प्रभाव रखते हुए वे शक्तिशाली बने हैं।

भावार्थ—हम 'माता-पिता व आचार्य, अतिथि' रूप पूर्व-अपर सब पितरों के लिए आदर का भाव धारण करते हैं। उन पितरों का लिए आदर का भाव धारण करते हैं जो शरीर पर पूर्ण प्रभुत्व रखते हुए शक्ति-सम्पादन की दिशाओं में चल रहे हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

मातली-यम-बृहस्पति

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥ ४७॥

१. (मा लक्ष्मीं तालयति—तल् प्रतिष्ठायाम्) 'मातलि' बुद्धि है। बुद्धिवाला होने से इन्द्र 'मातली' (मातलि+ई) कहलाता है। यह **मातली**=समझदार, बुद्धिमान् पुरुष **कव्यैः**=पितरों को—वृद्ध माता-पिता को दिये जानेवाले अन्नों से **वावृधानः**=धर्ममार्ग पर खूब बढ़नेवाला होता है। एक समझदार व्यक्ति माता-पिता को श्रद्धा व आदर से भोजन कराके, बाद में स्वयं भोजन करता है। इस माता-पिता के श्राद्ध को ही वह प्रत्यक्ष धर्म मानता है। इस सेवा से ही वह 'आयु, विद्या, यश व बल' में वावृधान होता है। २. **यमः**=संयमी पुरुष **अङ्गिरोभिः**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रस से वावृधान होता है। संयम इसकी शक्तियों की वृद्धि व स्थिरता का कारण बनता

है। **बृहस्पतिः**=उत्कृष्ट वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाला यह **ब्रह्मणस्पतिः**=बृहस्पति **ऋक्वभिः**=विज्ञानों के द्वारा बढ़नेवाला होता है। यह विज्ञान के द्वारा उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचनेवाला होता है। २. ये वे व्यक्ति हैं **ये**=जो **च**=निश्चय से **देवान् वावृधुः**=यज्ञों द्वारा देवों का वर्धन करते हैं, **यान् च**=और जिनको **देवाः वावृधुः**=वृष्टि आदि द्वारा देव बढ़ानेवाले होते हैं। **ते**=वे देवों को यज्ञों द्वारा प्रीणित करनेवाले **पितरः**=पितर **नः**=हमें **हवेषु**=हमारी पुकारों के होने पर **अवन्तु**=रक्षित व प्रीणित करनेवाले हों।

भावार्थ—हम समझदार बनकर माता-पिता को श्रद्धा से भोजनादि प्राप्त कराएँ, संयमी बनकर अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले हों, बृहस्पति बनकर विज्ञानों को प्राप्त करें। हम यज्ञों द्वारा देवों का वर्धन करें। अपने पितरों के प्रिय हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'स्वादु-मधुमान्-तीव्र व रसवान्' सोम

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु॥ ४८॥

१. **किल**=निश्चय से **अयम्**=यह सोम शरीर में ही व्याप्त किया जाने पर **स्वादु**=वाणी को स्वादवाला बनाता है (वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु)। सोमी पुरुष कभी कड़वी वाणी नहीं बोलता। **उत्**=और **अयम्**=यह **मधुमान्**=जीवन को मधुर बनानेवाला है। सोमरक्षण होने पर हमारी सब क्रियाएँ माधुर्य को लिये हुए होती हैं। **किल**=निश्चय से **अयम्**=यह **तीव्रः**=बड़ा तीव्र है—रोगरूप शत्रुओं के लिए भयंकर है। **उत**=और **अयम्**=यह **रसवान्**=अंग-प्रत्यंग को रसवाला बनाता है। रोगों को दूर करके यह हमें स्वस्थ व सबल शरीरवाला करता है। २. **उत् उ**=और निश्चय से **अस्य पपिवांसम्**=इस सोम का पान करनेवाले **इन्द्रम्**=इस जितेन्द्रिय पुरुष को **आहवेषु**=संग्रामों में **कश्चन**=कोई भी न **सहते**=पराभूत नहीं कर पाता। न इसपर कोई रोग आक्रमण कर पाता है और न ही कोई वासना इसे दबा पाती है।

भावार्थ—शरीर में सोम का रक्षण करनेवाला पुरुष 'मधुरवाणीवाला, मधुर व्यवहारवाला, नीरोग व अंग-प्रत्यंग में रसवाला' बनता है। इसे न रोग आक्रान्त कर पाते हैं, न वासना दबा पाती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

'वैवस्वत-यमराजा' का उपासन

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत॥ ४९॥

१. **प्रवतः**=(प्रकृष्टकर्मवतः) उत्कृष्ट कर्मोंवाले, **महीः**=(मह पूजायाम्) पूजा व उपासना करनेवालों को **परेयिवांसम्**=सुदूर स्थानों से भी प्राप्त होनेवाले प्रभु को **इति**=इस कारण से **हविषा सपर्यत**=हवि के द्वारा पूजित करो। प्रभु अज्ञानियों के लिए दूर-से-दूर होते हैं, परन्तु वे ही प्रभु 'पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्' ज्ञानियों के लिए यहाँ शरीर में ही गुहा के भीतर निहित होते हैं। **इति**=इस कारण इस हृदयस्थ प्रभु के दर्शन के लिए आवश्यक है कि हम उत्कृष्ट कर्मों में लगे रहें (प्रवत्) तथा प्रातः-सायं उस अद्वितीय सत् प्रभु का उपासन करनेवाले हों (महि)। वे प्रभु ही इन **बहुभ्यः**=अनेक अपासकों के लिए **पन्थाम्**=जीवन-मार्ग को **अनुपस्पशानम्**=अनुकूलता से दिखानेवाले होते हैं। 'सोम्यानां भूमिरसि' वे प्रभु इन शान्त, सोम्य

स्वभाववाले उपासकों को, अज्ञानवश विरुद्ध दिशा में जा रहे हों तो मुख मोड़कर ठीक दिशा में चलानेवाले होते हैं। २. वे प्रभु **वैवस्वतम्**=ज्ञान की किरणोंवाले हैं। अपने उपासकों के हृदयों को इन ज्ञान-किरणों से उज्ज्वल करनेवाले हैं। यह ज्ञान का प्रकाश ही इन उपासकों को प्रथभ्रष्ट होने से बचाता है। **जनानां संगमनम्**=ये प्रभु लोगों के एकत्र होने के स्थान हैं। इस प्रभु में अधिष्ठित होने पर सब मनुष्य परस्पर एकत्व का अनुभव करते हैं। **यमम्**=हृदयस्थ रूपेण वे प्रभु सबका नियमन करनेवाले हैं तथा **राजानम्**=सूर्य-चन्द्र व तारे आदि सभी लोक-लोकान्तरों की गति को व्यवस्थित करनेवाले हैं। इन प्रभु का उपासन हवि के द्वारा होता है।

भावार्थ—उत्कृष्ट कर्मोंवाले उपासकों को प्रभु प्राप्त होते हैं। इन विनीत उपासकों के लिए प्रभु मार्ग-दर्शन करते हैं। वे प्रभु ज्ञान की किरणोंवाले हैं। सबका निवासस्थान होते हुए हमें परस्पर एकत्व का अनुभव कराते हैं। उस नियामक व शासक प्रभु का पूजन यही है कि हम यज्ञशेष का सेवन करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

यमनिर्दिष्ट मार्ग पर चलना

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः॥ ५०॥

१. वे **प्रथमः यमः**=(प्रथ विस्तारे) सम्पूर्ण जगत् में विस्तृत नियामक प्रभु **नः**=हमारे लिए **गातुं विवेद**=मार्ग का ज्ञान देते हैं। **उ**=निश्चय से **एषा गव्यूतिः**=यह मार्ग **अपभर्तवा न**=अपहरण के लिए नहीं होता, अर्थात् इस मार्ग पर चलने से हम इस संसार में विषयों से आकृष्ट होकर पथभ्रष्ट नहीं हो जाते। २. यह वह मार्ग है **यत्र**=जिसपर **नः**=हमारे **पूर्वे पितरः**=अपना पूरण करनेवाले—अपनी न्यूनताओं को दूर करनेवाले, रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त पितर **परेताः**=चले हैं। इस मार्ग पर चलने से ही तो वे अपना पूरण कर पाये हैं। **एना**=इस मार्ग पर चलने के द्वारा **जज्ञानाः**=अपनी शक्तियों का प्रादुर्भाव व विकास करनेवाले लोग ही **पथ्याः**=उत्तम मार्ग पर चलनेवाले होते हैं और **अनुस्वाः**=उस प्रभु के अनुकूल व प्रिय होते हैं।

भावार्थ—प्रभु से उपदिष्ट मार्ग पर ही चलना चाहिए। यही मार्ग हमारे पूरण व विकास के लिए होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, पितरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शान्ति-निर्भयता-निर्दोषता

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेनाधा नः शं योररपो दधात॥ ५१॥

१. **बर्हिषदः**=यज्ञों में आसीन होनेवाले **पितरः**=रक्षक लोगो! **ऊती**=हमारे रक्षण के हेतु से **अर्वाक्**=आप हमें समीपता से प्राप्त होवें। **इमा हव्या**=इन हव्य पदार्थों को हम **वः चकृमा**=आपके लिए संस्कृत करते हैं। **जुषध्वम्**=आप उन वस्तुओं का प्रीतिपूर्वक सेवन कीजिए। वस्तुतः 'माता पिता की सेवा करना—उनको खिलाकर ही खाना' यह पितृयज्ञ है—एक गृहस्थ का यह प्रत्यक्ष धर्म है। ये पितर अपने क्रियात्मक उदाहरण से हमारे जीवनों में यज्ञों को प्रेरित करते हैं। २. हे पितरो! **ते**=वे आप लोग **शन्तमेन**=अत्यन्त शान्ति देनेवाले **अवसा**=रक्षण के साथ **आगत**=हमें प्राप्त होओ। **अधा**=और **नः**=हमारे लिए **शंयोः**=शान्ति को तथा यावन (पृथक्- करण) को और **अरपः**=निर्दोषता को **दधात**=धारण कीजिए।

भावार्थ—हमें पितरों का आदर करना चाहिए। ये यज्ञशील पितर हमारा रक्षण करते हुए हमें 'शान्ति, निर्भयता व निर्दोषता' प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, पितरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पितरों द्वारा कर्त्तव्यकर्मों का उपदेश

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम॥ ५२॥

१. हे **पितरः**=पितरो! आप **जानु आच्या**=घुटनों को संगतरूप में पृथिवी पर स्थापित करके, अर्थात् घुटने मिलाकर आसन पर स्थित होकर **दक्षिणतः निषद्य**=दक्षिण की ओर बैठकर, अर्थात् हमारे दहिने ओर बैठकर **विश्वे**=सब **नः**=हमारे लिए **इदं हविः**=इस हवि को **अभिगृणन्तु**=उपदिष्ट करें। आप हमें यज्ञादि कर्मों का उपदेश करें। (घुटने मिलाकर भूमि पर बैठने से वात पीड़ाएँ सामान्यतः नहीं होतीं। ये होती प्रायः बड़ी उम्र में ही हैं, अतः पितरों के लिए यह आसन उपयुक्ततम है)। आदर देने के लिए हम इन्हें दक्षिणपार्श्व में बिठाते हैं। इस प्रकार स्थित होकर ये हमारे लिए हवि का उपदेश करें। यह हवि ही प्रभु-पूजन का सर्वोत्तम साधन है 'कस्मै देवाय हविषा विधेम'। २. घर पर आये हुए पितरों के विषय में हम कुछ त्रुटि भी कर बैठें तो हम चाहते हैं कि वे पितर हमसे अप्रसन्न न हो जाएँ। हे (पितरः) मान्य पितरो! **पुरुषता**=एक अल्पज्ञ पुरुष के नाते **यत्**=जो भी **वः**=आपके विषय में **आगः**=अपराध **कराम**=कर बैठें, उस **केनचित्**=किसी भी अपराध से **नः**=हमें **मा**=मत **हिंसिष्ट**=हिंसित कीजिए। आप हमसे रुष्ट न हों, आपकी कृपा हमपर बनी ही रहे।

भावार्थ—पितर आएँ। संगतजानु होकर वे हमारे दक्षिणपार्श्व में बैठें और हमारे लिए कर्त्तव्यकर्मों का उपदेश करें। अज्ञानवश हो जानेवाले हमारे अपराधों से वे अप्रसन्न न हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

त्वष्टा की दुहिता का परिणय

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश॥ ५३॥

१. **त्वष्टा**=संसार के निर्माता व सारे ब्रह्माण्ड को गति देनेवाले (त्वक्षतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः) तथा दीप्तिमय (विष्णोर्वा स्याद् दीप्तिकर्मणः) प्रभु अपनी **दुहित्रे**=वेदवाणीरूप दुहिता (मानव-जीवन का प्रपूरण करनेवाली) के लिए **वहतुं कृणोति**=विवाह को रचते हैं। **तेन**=इस विवाह के हेतु से **इदं विश्वं भुवनम्**=यह सारा भुवन उपस्थित (संगत) होता है। वस्तुतः इस वेदवाणी का विवाह सब चाहनेवाले मनुष्यों के साथ होता है। जो वेदवाणी को चाहते हैं, उन्हें यह प्राप्त होती है 'काम्यो हि वेदाधिगमः'। २. यह **पर्युह्यमाना**=परिणीत होती हुई वेदवाणी **यमस्य माता**=एक संयत जीवनवाले पुरुष का निर्माण करती है। वेदवाणी के साथ हम अपना सम्बन्ध स्थापित करेंगे तो यह हमारे जीवन को अवश्य उत्कृष्ट बनाएगी। यह वेदवाणी **महः**=तेजस्वी **विवस्वतः**=ज्ञान की किरणोंवाले (ज्ञानी) पुरुष की **जाया**=जन्म देनेवाली है। (तद्धि जायाया जायात्वं यदस्यां जायते पुनः)। इस वेदवाणी में जन्म लेकर यह द्विज बन जाता है। इसप्रकार यह **ननाश**=(नश् to reach, attain, meet with, find) उस प्रभु के साथ मिलानेवाली होती है। वेदवाणी को जीवन का अंग बनाते हुए हम प्रभु को पाते हैं।

भावार्थ—प्रभु अपनी वेदवाणीरूप दुहिता को हमें साथी के रूप में देते हैं। यह साथी

हमें 'बड़े संयत जीवनवाला, तेजस्वी व ज्ञानी' बनाता है। ऐसा बनकर हम प्रभु को पाने के अधिकारी बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'यम+वरुण' (संयम-निर्द्वेषता)

प्रेहि॒प्रेहि॑ प॒थिभि॑: पूर्या॒णैर्येना॑ ते॒ पूर्वे॑ पि॒तर॑: परे॑ताः।
उ॒भा राजा॑नौ स्व॒धया॒ मद॑न्तौ य॒मं प॑श्यासि॒ वरु॑णं च दे॒वम्॥ ५४॥

१. **येन**=जिस मार्ग से **ते**=तेरे **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **पितरः**=रक्षक लोग **परेताः**=उत्कृष्टता से चले हैं तू भी उन **पूर्याणैः**=ब्रह्मपुरी की ओर ले-चलनेवाले **पथिभिः**=मार्गों से **प्रेहि**=चल और **प्रेहि**=अवश्य चलनेवाला बन। हम अपने बड़ों के उत्कृष्ट मार्ग का अनुसरण करनेवाले बनें। आचार्य विद्यार्थी को अन्तिम उपदेश यही तो देते हैं कि 'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि'। २. तू **यमं पश्यासि**=अपने मार्गदर्शन के लिए यम को देख **च**=और **वरुणं देवम्**=वरुणदेव को देख। यम के जीवन की विशेषता 'जीवन का नियन्त्रण' है और 'वरुण' द्वेष का निवारण करनेवाला—द्वेषशून्य व सबके प्रति प्रेमपूर्ण। इनको देखने का अभिप्राय यह है कि हम भी 'द्वेषशून्य व नियन्त्रित जीवनवाले' बनें। **उभा**=ये दोनों 'नियन्त्रित जीवनवाला, व द्वेषशून्य व्यक्ति' **राजानौ**=चमकनेवाले होते हैं (राज् दीप्तौ)—इनका जीवन दीप्त होता है और **स्वधया मदन्तौ**=आत्मशक्ति के धारण से हर्ष का अनुभव करते हैं। 'यम' बनकर ये पूर्ण स्वस्थ होते हैं और परिणामतः स्वास्थ्य की दीप्ति से चमकते हैं तथा 'वरुण' निर्द्वेष होने के कारण ये अपने हृदय में आत्मप्रकाश देखते हैं और इसप्रकार आत्मशक्ति को धारण करते हुए आनन्दित होते हैं।

भावार्थ—हमारा मार्ग वही हो जो हमारे धार्मिक पितरों का है—हमारे जीवन में कुलधर्म नष्ट न हो जाए। हम यम और वरुण के मार्ग से चलते हुए संयम से स्वस्थ जीवन की दीप्तिवाले बनें और निर्द्वेषता से पवित्र हृदय होकर आत्मप्रकाश को देखते हुए आनन्दित हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यात्रा का अवसान

अपे॑त॒ वी॑ त॒ वि च॑ सर्प॒ताता॒ऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन्।
अहो॑भिर॒द्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्यव॒साना॑मस्मै॥ ५५॥

१. इस जीवनयात्रा में **अपेत**=सब दुरितों से दूर होने के लिए यत्न करो। **वीत** (वि+इत)= विशिष्ट मार्ग पर चलो, **च**=और **विसर्पत**=विशेषरूप से गतिशील बनो। आलस्य को अपने समीप मत फटकने दो। इसी दृष्टिकोण से **पितरः**=रक्षक लोग **अस्मै**=इसके लिए **लोकम् अक्रन्**=प्रकाश प्राप्त कराते हैं। पितरों से आलोक प्राप्त करके ये अशुभ से दूर होते हुए शुभ मार्ग का ही आक्रमण करते हैं। २. इसप्रकार **अहोभिः**=(अहन्) एक-एक क्षण के सदुपयोग के द्वारा—समय को नष्ट न करने के द्वारा—**अद्भिः**=(आपः=रेतः) रेतःकणों की रक्षा के द्वारा तथा **अक्तुभिः**=ज्ञान की रश्मियों के द्वारा **व्यक्तम्**=विशेषरूप से अलंकृत **अवसानम्**=जन्म-मरण के अन्त को **अस्मै**=इस साधक के लिए **यमः**=सर्वनियन्ता प्रभु **ददाति**=देते हैं, अर्थात् इसे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर देते हैं।

भावार्थ—मोक्षप्राप्ति का साधन यही है कि हम जीवन को अलंकृत व सुशोभित बनाएँ। जीवन को अलंकृत करने के लिए (क) समय को व्यर्थ न जाने दें, (ख) रेतःकणों का रक्षण

करें, (ग) प्रकाश की किरणों को प्राप्त करें। संक्षेप में बात यह है कि सदा उत्तम कर्मों में लगे रहने से वीर्यरक्षण होता है। उससे ज्ञानाग्नि समिद्ध होकर हमारा जीवन प्रकाशमय होता है। इस प्रकाश से जीवन सुशोभित होगा तभी हम मोक्ष के अधिकारी बनेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पितृयज्ञ (उशन्तः-द्युमन्तः)

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे॥ ५६॥
द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि।
द्युमान्द्युमत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे॥ ५७॥

१. हे प्रभो! **उशन्तः**=जीवन-यात्रा को सफलतापूर्वक पूर्ण करने की कामना करते हुए हम **त्वा**=आपको **इधीमहि**=अपने हृदयदेश में दीप्त करते हैं—आपकी ज्योति को देखने के लिए यत्नशील होते हैं। हे प्रभो! **उशन्**=हम पुत्रों की सफलता को चाहते हुए आप **उशतः पितॄन्**=हमारे हित को चाहनेवाले सत्प्रेरणाओं द्वारा हमारा रक्षण करनेवाले पितरों को **आवह**=हमारे घरों पर प्राप्त कराइए, जिससे वे **हविषे अत्तवे**=हमारे घरों पर हवि को (पवित्र भोजनों को) ग्रहण करने का अनुग्रह करें। २. हे प्रभो! **द्युमन्तः**=काम-क्रोध आदि शत्रुओं को जीतने की कामनावाले हम (दिव् विजिगीषायाम्) **त्वा**=आपको **इधीमहि**=अपने हृदयदेश में दीप्त करते हैं—आपकी ज्योति को देखने के लिए यत्नशील होते हैं। **द्युमन्तः**=शत्रुविजय की कामनावाले हम **समिधीमहि**=आपको अपने हृदयों में ख़ूब ही दीप्त करते हैं। हे प्रभो! आप **द्युमान्**=स्वयं ज्योतिर्मय होते हुए **द्युमन्तः पितॄन्**=ज्योतिर्मय जीवनवाले पितरों को **आवह**=हमारे घरों पर प्राप्त कराइए, जिससे वे **हविषे अत्तवे**=हमारे घरों पर हवि को (पवित्र भोजनों को) ग्रहण करें।

भावार्थ—हम अपने हृदयों में प्रभु को देखने के लिए प्रबल कामनावाले हों और इसी उद्देश्य से काम-क्रोधरूप शत्रुओं को जीतने के लिए यत्नशील हों। प्रभु के अनुग्रह से हमें 'हमारा हित चाहनेवाले व ज्योतिर्मय जीवनवाले' पितर प्राप्त हों। हम उनका भोजनादि द्वारा सत्कार करें और उनसे उचित प्रेरणाओं व ज्ञानों को प्राप्त करने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सुमति व सौमनस

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥ ५८॥

१. **नः**=हमारे **पितरः**=पालन करनेवाले (Guardians) **अङ्गिरसः**=(अगि गतौ) अत्यन्त गतिशील व क्रियामय जीवनवाले हैं, अतएव अंग-अंग में रसवाले हैं। **नवग्वा**=वे स्तुत्य गतिवाले हैं (नु स्तुतौ) और (नव गु) अतएव नव्वे वर्ष के दीर्घजीवन तक पहुँचनेवाले हैं। **अथर्वाणः**=(अथ अर्वाङ्) सदा आत्मनिरीक्षण करते हुए ये (अ-थर्व) स्थिर वृत्तिवाले हैं—विषयों से इनके मन डाँवाडोल नहीं हो जाते। **भृगवः**=(भ्रस्ज पाके) इन्होंने ज्ञानाग्नि से अपने को परिपक्व किया है, अतएव **सोम्यासः**=अत्यन्त सौम्य व विनीत हैं। २. **तेषाम्**=इन **यज्ञियानाम्**=संगतिकरण योग्य पितरों की **सुमतौ**=कल्याणी मति में तथा **भद्रे सौमनसे**=प्रशस्त (कल्याणकर) उत्तम मन में **वयं अपि स्याम**=हम भी हों, अर्थात् इन पितरों के संग में उनकी सत्प्रेरणाओं से हमें भी 'सुमति व भद्र सौमनस' प्राप्त हो। ये पितर अन्नमयकोश में 'अङ्गिरस' हैं—अंग-अंग में रस व शक्तिवाले हैं। प्राणमयकोश में प्रत्येक इन्द्रिय की प्रशंसनीय गतिवाले

'नवग्व' हैं। मनोमयकोश में 'अथर्व' न डाँवाडोल वृत्तिवाले हैं। विज्ञानमयकोश में 'भृगु' व परिपक्व ज्ञानवाले हैं और आनन्दमयकोश में अत्यन्त 'सौम्य' हैं—उस सोम (शान्त प्रभु) के साथ निवास करनेवाले हैं।

भावार्थ—हम 'अङ्गिरस-नवग्व-अथर्वा-भृगु व सौम्य' पितरों के सम्पर्क में आकर इनकी 'सुमति व भद्र सौमनस' को प्राप्त करके इन-जैसे ही बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पुरोबृहती**॥

सत्संग व वासनाशून्य हृदय

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्बर्हिष्या निषद्य॥ ५९॥

१. हे **यम**=संयमी जीवनवाले पुरुष! तू **इह**=इस जीवन में **अङ्गिरोभिः**=सदा क्रियाशील जीवनवाले और अतएव अंग-प्रत्यंग में रसवाले, **यज्ञियैः**=यज्ञशील व संगतिकरणयोग्य **वैरूपैः**= विशिष्ट तेजस्वीरूपवाले पितरों के साथ (मान्य पुरुषों के साथ) **इह**=यहाँ इस संसार में **आगहि**= आनेवाला हो—उनके साथ तेरा उठना बैठना हो और **मादयस्व**=उन्हीं के साथ तू आनन्द का अनुभव कर। २. तू **अस्मिन्**=इस जीवन में, **बर्हिषि**=(उद् बृह=उखाड़ना) वासनाशून्य हृदय में—जिसमें से सब वासनाओं को उखाड़ दिया गया है **आनिषद्य**=स्थित होकर **विवस्वन्तं हुवे**=ज्ञान की किरणोंवाले उस प्रभु को पुकारनेवाला हो, **यः ते पिता**=जो तेरे पिता हैं। वस्तुतः हमें यही चाहिए कि हम अपने जीवन को यज्ञमय बनाएँ—हृदय को वासनाशून्य करें। इन्हीं में स्थित होकर प्रभु की उपासना करें।

भावार्थ—हमारा संग सदा उत्तम हो। जीवन में हम हृदय को वासनाशून्य बनाकर वहाँ प्रभु का उपासन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यम का प्रसार

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषो मादयस्व॥ ६०॥

१. हे **यम**=संयमी पुरुष! **हि**=निश्चय से **इमं प्रस्तरम्**=इस पत्थर के समान दृढ़ शरीर में **आरोह**=तू आरोहण कर। इस शरीर में स्थित होता हुआ तू उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़नेवाला हो। शरीर को दृढ़ बनाने के साथ तू अपनी मानस व बौद्धिक उन्नति के लिए **अङ्गिरोभिः**=(अगि गतौ) गतिशील जीवनवाले **पितृभिः**=पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त व्यक्तियों से **संविदानः**=मिलकर ज्ञान की चर्चा करनेवाला बन। इन गतिशील व पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त लोगों के सम्पर्क में तू भी वैसा ही बनेगा। २. अब **त्वा**=तुझे **कविशस्ताः**=उस महान् कवि प्रभु से **उपदिष्ट मन्त्राः**= ज्ञान की वाणियाँ **आवहन्तु**=जीवन के मार्ग में सर्वत्र ले-चलनेवाली हों। 'मन्त्रश्रुत्यं चरामसि' जैसा तू इन वेदों में अपने कर्त्तव्यों को सुनता है, वैसा ही करनेवाला बन। हे **राजन्**=इन वेदवाणियों के अनुसार व्यवस्थित जीवनवाले (Regulated) पुरुष! तू **एना**=इस **हविषः**=हवि के द्वारा ही **मादयस्व**=आनन्द का अनुभव कर। तुझे यज्ञशेष के सेवन में आनन्द आये।

भावार्थ—संयम से हम शरीर को पत्थर के समान दृढ़ बनाएँ। गतिशील व रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त लोगों के साथ हमारा संग हो। वेदज्ञान के अनुसार हम जीवन को बनाएँ। हवि के सेवन में ही आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

द्युलोक का आरोहण

इत एत उदारुहन्दिवस्पृष्ठान्यारुहन्।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

१. **एते**=गतमन्त्र के गतिशील व रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोग **इतः**=इस पृथिवीपृष्ठ से **उत् आरुहन्**=ऊपर चढ़ते हैं। **दिवः पृष्ठानि आरुहन्**=ये द्युलोक के पृष्ठों पर आरूढ़ होते हैं। पृथिवीपृष्ठ से अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष से द्युलोक के पृष्ठ पर पहुँचते हैं। २. **भूर्जयः**=(भूः=प्राणं, तं जयति) प्राणों का विजय करनेवाले—प्राणसाधना द्वारा सब इन्द्रिय-दोषों को दग्ध करनेवाले, **अङ्गिरसः**=अंग-प्रत्यंग को रसमय रखनेवाले—शरीर को जीर्ण करनेवाली वासनाओं को दग्ध करनेवाले, सरस अंगोंवाले ये व्यक्ति **यथा पथा**=शास्त्रानुकूल मार्ग से—यथार्थ मार्ग से **द्यां प्रययुः**=द्युलोक को—प्रकाशमयलोक को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा प्राणों को वश में करनेवाले व अंग-प्रत्यंग में रसवाले बनकर योग्य मार्ग से आक्रमण करते हुए ऊपर उठते चलें और द्युलोक को प्राप्त हों—देवलोक को, प्रकाशमय लोक को प्राप्त हों।

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

[२] द्वितीयं सूक्तम्

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रभु-प्राप्ति के साधन

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥

१. **यमाय**=उस सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिए **सोमः पवते**=(पूयते) सोम पवित्र किया जाता है। शरीर में सोम को—वीर्यशक्ति को वासना से मलिन व विनाश होने से बचाने पर ज्ञानाग्नि की दीप्ति के द्वारा प्रभुदर्शन होता है। **यमाय**=इस प्रभु की प्राप्ति के लिए ही **हविः**=दानपूर्वक अदन—यज्ञशेष का सेवन **क्रियते**=किया जाता है। २. **यमम्**=उस सर्वनियन्ता प्रभु को **ह**=निश्चय से **यज्ञः**=देवपूजक, देव के साथ संगतिकरण-(मेल)-वाला, देव के प्रति अपना अर्पण करनेवाला व्यक्ति **गच्छति**=प्राप्त होता है। जो व्यक्ति **अग्निदूतः**=अग्निरूप दूतवाला है—उस अग्रणी प्रभु से ज्ञान के व स्वकर्त्तव्यों के संदेश को सुनता है तो **अरंकृतः**=सब दिव्यगुणों से अलंकृत जीवनवाला बनता है।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि (१) हम शरीर में सोम का रक्षण करें, (२) दानपूर्वक अदन की वृत्तिवाले हों (३) प्रभुपूजक—प्रभुमेल व प्रभु के प्रति अर्पण की वृत्तिवाले हों, (४) प्रभु से वेद में उपदिष्ट स्वकर्त्तव्यों के सन्देश को सुनें, (५) जीवन को सद्गुणों से अलंकृत करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

त्याग व बड़ों का आदर

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

१. **यमाय**=उस सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिए **मधुमत्तमम्**=अत्यन्त मधुर—अतिशयेन प्रिय भौतिक वस्तु को भी **जुहोत**=देनेवाले बनो। लोकहित के लिए—प्राजापत्य यज्ञ में तन-मन-धन का अर्पण करने से ही प्रभु-प्राप्ति होती है **च**=और इसप्रकार **प्रतिष्ठत**=प्रतिष्ठा पाओ। इस त्याग से इहलोक में यश मिलता है तो परलोक में प्रभु। २. इसप्रकार का जीवन बनाने के लिए **ऋषिभ्यः इदं नमः**=तत्त्वद्रष्टा पुरुषों के लिए हम यह नमस्कार करते हैं। **पूर्वजेभ्यः**=अपने बड़ों के लिए नमस्कार करते हैं। **पूर्वेभ्यः**=अपना पालन व पूरण करनेवालों के लिए नमस्कार करते हैं। **पथिकृद्भ्यः**=जो हमारे लिए मार्ग बनाते हैं—अपने उदाहरण से हमें मार्ग दिखलाते हैं, उनके लिए नमस्कार हो।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम प्रियतम भौतिक वस्तु का भी त्याग कर सकें तथा संसार में मार्गदर्शकतत्त्वज्ञों का आदर करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

घृतं, पयः, हविः

यमाय घृतवत्पयो राज्ञे हविर्जुहोतन।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे॥ ३॥

१. **यमाय**=सर्वनियन्ता प्रभु की प्राप्ति के लिए **राज्ञे**=सबके शासक प्रभु के लिए **घृतवत् पयः हविः**=घृत की भाँति दूध को—अथवा घृतवाले दूध को तथा यज्ञशेषान्न को (हु=दानपूर्वक अदन) **जुहोतन**=जाठराग्नि में आहुत करनेवाले बनो। हम 'घृत, दुग्ध व यज्ञिय अन्नों' का सेवन करते हुए सात्त्विक बुद्धिवाले बनकर प्रभुदर्शन के योग्य बनेंगे। २. **सः**=वह प्रभु **नः**=हमारे लिए **जीवेषु**=सब जीवों में **प्रजीवसे**=प्रकृष्ट जीवन के लिए **दीर्घम् आयुः**=दीर्घ जीवन **आयमेत्**=दें। इस दीर्घजीवन में साधना करते हुए हम अधिकाधिक पवित्र जीवनवाले बनें।

भावार्थ—हम सर्वनियन्ता, सर्वरक्षक प्रभु की प्राप्ति के लिए 'घृत-दुग्ध व यज्ञिय भोजनों' का ही प्रयोग करें। दीर्घ जीवन प्राप्त करके साधना द्वारा उसे प्रकृष्ट बनाने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

तप व दण्ड की उचित व्यवस्था

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृँरुप॥ ४॥

१. ज्ञान देनेवाले आचार्य भी पितर हैं। विद्यार्थी को अग्रगति कराने से ये 'अग्नि' कहलाते हैं। माता-पिता इस अग्नि के प्रति विद्यार्थी को प्राप्त करा देते हैं। वह आचार्यरूप अग्नि इन्हें तीव्र तपस्या में ले-चलता है, परन्तु इतना अतिमात्र तप भी ठीक नहीं जो उसके शरीर को अतिक्षीण ही कर डाले, अतः मन्त्र में कहते हैं कि हे **अग्ने**=अग्रणी आचार्य! **एनम्**=इस आपके प्रति अर्पित शिष्य को **मा विदहः**=तपस्या की अग्नि में भस्म ही न कर दीजिए। 'शरीरमबाधमानेन तप आसेव्यम्' शरीर को पीड़ित न करते हुए ही तप करना ठीक है। इसे अतिक्षीण करके **मा अभिशूशुचः**=शोकयुक्त ही न कर दीजिए। यह शोकातुर हो घर को ही न याद करता रहे। २. तप के अतिरिक्त शिक्षा में दण्ड भी अनिवार्य हो जाता है, परन्तु क्रोध में कभी अधिक दण्ड न दे दिया जाए। हे आचार्य! **अस्य त्वचं मा चिक्षिपः**=इसकी त्वचा को ही न क्षिप्त कर देना—चमड़ी ही न उधेड़ देना। **मा शरीरम्**=इसका शरीर विक्षिप्त न हो जाए, अर्थात् दण्ड के

कारण इसका कोई अंग भंग ही न हो जाए। संक्षेप में, न तप ही अतिमात्र हो और न दण्ड। शरीर को अबाधित करनेवाला तप हो और अमृतमय हाथों से ही दण्ड दिया जाए। ३. इसप्रकार तप व दण्ड की उचित व्यवस्था से **यत्**=जब हे **जातवेदः**=ज्ञानी आचार्य! आप **शृतं आकरसि**=इस विद्यार्थी को ज्ञान में परिपक्व कर चुकें, **अथ**=तब **ईम्**=अब **एनम्**=इस विद्यार्थी को **पितॄन् उप प्रहिणुतात्**=जन्मदाता माता-पिता के समीप भेजने का अनुग्रह करें। आचार्यकुल में ज्ञानाग्नि में परिपक्व होकर यह विद्यार्थी समावृत्त होकर आज घर में आता है।

भावार्थ—आचार्य, उचित तप व दण्ड-व्यवस्था रखते हुए, विद्यार्थी को ज्ञान-परिपक्व करते हैं और अध्ययन की समाप्ति पर उसे पितृगृह में वापस भेजते हैं। यही इसका समावर्तन है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, जातवेदा**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

असुनीति द्वारा देवों का वशीकरण

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात्पितृभ्यः।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति॥ ५॥

१. हे **जातवेदः**=ज्ञानी आचार्य! आप **यदा**=जब **शृतं कृणवः**=शिष्य को ज्ञानपरिपक्व कर देते हैं, **अथ**=तो **ईम्**=अब **एनम्**=इसको **पितृभ्यः**=अपने माता-पिता के लिए **परिदत्तात्**=वापस देने का अनुग्रह करें। २. आचार्यकुल में रहता हुआ **यदा**=जब **उ**=निश्चय से **एताम् असुनीतिम्**=इस प्राणविद्या को—जीवन-नीति को **गच्छाति**=अच्छी प्रकार प्राप्त कर लेता है, **अथ**=तब यह ज्ञान को प्राप्त पुरुष **देवानाम्**=सब देवों का—इन्द्रियों का **वशनीः**=वश में करनेवाला **भवाति**=होता है। प्राणसाधना द्वारा यह शरीरस्थ सब देवों को स्वस्थ व स्वाधीन देखता है। सूर्य आदि देवों के साथ इसकी अनुकूलता होती है।

भावार्थ—आचार्यकुल में प्राणविद्या व प्राणसाधना करके हम इन्द्रियों को वश में करनेवाले हों। सब देवों को हम वशीभूत कर पाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यम का सुन्दरतम जीवन

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता॥ ६॥

१. गतमन्त्र का साधक **त्रिकद्रुकेभिः**=(कदि आह्वानेषु) तीनों कालों में प्रभु के आह्वान के साथ **पवते**=चलता है। प्रातः, मध्याह्न व सायं—तीनों समय प्रभु की प्रार्थना करता है। प्रातःकाल जीवन के प्रथम २४ वर्ष हैं, मध्याह्न अगले ४४ वर्ष हैं और सायं अन्तिम ४८ वर्ष हैं। इन सबमें यह प्रभु-प्रार्थना से जीवन को सशक्त व उत्साहमय बनाये रखता है। अथवा 'ज्योतिः, गौः, आयुः' नामक तीन यागविशेष त्रिकद्रुक हैं। यह साधक इन यागों को करता हुआ जीवन में चलता है। साधना द्वारा ज्ञान 'ज्योति' का सम्पादन करता है, प्राणसाधना द्वारा इन्द्रियों को (गौः) शुद्ध बनता है और क्रियाशीलता के द्वारा दीर्घ व उत्तम 'आयुष्य'-वाला होता है। २. इसके जीवन में **षड् उर्वीः**='द्यौ च पृथिवी च आपश्च ओषधयश्च ऊर्क् च सूनृता च' द्युलोक, अर्थात् ज्ञानदीप्त मस्तिष्क, पृथिवी, अर्थात् विस्तृतशक्तिसम्पन्न शरीर, आपः अर्थात् रेतःकण (आपो रेतो भूत्वा०) ओषधयः=दोषों का दहन करनेवाले सात्त्विक अन्न, ऊर्क्=बल और प्राणशक्ति तथा सूनृता=प्रिय सत्यात्मिकावाणी—ये छह उर्वियाँ **आहिताः**=स्थापित होती हैं।

एकम् इत् बृहत्=इसका शरीर में—केन्द्र-स्थान में स्थापित सबसे महत्त्वपूर्ण साधन 'मन' (हृदय) निश्चय से विशाल होता है (ज्योतिषां ज्योतिरेकम्) ३. इसप्रकार **यमे**=इस साधनामय जीवनवाले संयमी पुरुष में **ताः सर्वाः**=आगे वर्णित सब बातें **अर्पिता**=अर्पित होती हैं—स्थापित होती हैं। एक तो **त्रिष्टुप्**= 'काम, क्रोध, लोभ' इन तीनों को रोक देना; दूसरे **गायत्री**=(गयाः प्राणास्तान् तत्रे) प्राणों का रक्षण तथा **छन्दांसि**=पापों का छादन—बुरी वृत्तियों का दूरीकरण।

भावार्थ—हम सदा प्रभुस्मरण के साथ चलें। हमारे शरीर व मस्तिष्क दोनों ही ठीक हों, जलों व ओषधियों का प्रयोग करते हुए शक्ति का रक्षण करें, प्राणशक्ति व सूनृतवाणीवाले हों। हमारा हृदय विशाल हो। 'काम, क्रोध, लोभ' को रोकें। प्राणों का रक्षण करें। पापों से अपने को दूर रक्खें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सूर्य आदि देवों के साथ सम्पर्क से शरीर का स्वास्थ्य

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥

१. तू **चक्षुषा**=चक्षु के हेतु से **सूर्यं गच्छ**=सूर्य के प्रति जा। सूर्य ही तो चक्षु का रूप धारण करके आँखों में प्रवेश करता है 'सूर्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्'। सूर्याभिमुख होकर हम प्रभु का ध्यान करते हैं और सूर्य आँखों में शक्ति प्राप्त कराता है। **आत्मना**=(आत्मा प्राणाः, सा०) प्राणों के हेतु से **वातम्**=वायु की ओर जा। शुद्ध वायु में प्राणायाम के द्वारा प्राणशक्ति का वर्धन होता ही है। **दिवं च गच्छ**=द्युलोक की ओर तू जानेवाला बन। अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को तू विज्ञान के नक्षत्रों से और ज्ञान के सूर्य से दीप्त करनेवाला हो **च**=और **धर्मभिः**=अंग-प्रत्यंग के धारण के उद्देश्य से तू **पृथिवीं गच्छ**=शरीररूप पृथिवी की ओर जानेवाला बन। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पृथिवी से सम्पर्क आवश्यक है। मिट्टी शरीर के विषों को खैंच लेती है। २. इसीप्रकार तू **अपः गच्छ**=जलों की ओर जानेवाला बन। शरीर में जल रेतःकणों के रूप में रहते हैं। **यदि तत्र ते हितम्**=यदि वहाँ तेरा हित है तो तू इन रेतःकणों की ओर जानेवाला बन। इन रेतःकणों का रक्षण आवश्यक ही है। तू **शरीरैः**=अपने 'स्थूल-सूक्ष्म व कारण' शरीरों के हेतु से **ओषधीषु प्रतितिष्ठा**=ओषधियों में प्रतिष्ठित हो। वानस्पतिक भोजनों के द्वारा हमारे सब शरीर ठीक रहते हैं।

भावार्थ—सूर्य आदि देवों के साथ हमारी अनुकूलता बनी रहे। शरीरों के स्वास्थ्य के लिए वानस्पतिक भोजनों का ही प्रयोग करें। देव वनस्पति का ही सेवन करते हैं। मांस देवों का भोजन नहीं है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'तप, पवित्रता व अर्चना' से प्रभु का धारण

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥

१. **अजः**=कभी न उत्पन्न होनेवाला (अज) अथवा गति के द्वारा सब बुराइयों को दूर करनेवाला (अज् गतिक्षेपणयोः) प्रभु ही **भागः**=तेरा उपास्य है (भज् सेवायाम्) **तम्**=उस प्रभु को **तपसः**=तप के द्वारा **तपस्व**=अपने अन्दर दीप्त कर—उस प्रभु के प्रकाश को तप के द्वारा देखनेवाला बन। **तम्**=उस प्रभु को **ते शोचिः**=तेरी शुचिता (पवित्रता) **तपतु**=दीप्त करे। **तम्**=उस

प्रभु को **ते अर्चिः**=तेरी पूजा व उपासना दीप्त करे। प्रभु का दर्शन 'तप-पवित्रता-व उपासना' से होता है। २. हे **जातवेदः**=उत्पन्न ज्ञानवाले उपासक! **याः**=जो तेरी **शिवाः तन्वः**=शिव तनु हैं—पवित्र कल्याणमय शरीर है, **ताभिः**=उन शरीरों से **एनं वह**=इस प्रभु को अपने अन्दर धारण कर। उस प्रभु को धारण कर, जो **उ**=निश्चय से **सुकृतां लोकम्**=पुण्यशील लोगों के निवासस्थान हैं अथवा पुण्यशील लोगों को प्रकाश प्राप्त करानेवाले हैं।

भावार्थ—हम 'तप, पवित्रता व ज्ञानदीप्ति तथा उपासना' से शरीरों को निर्दोष बनाते हुए उस प्रभु को धारण करनेवाले बनें, जिन प्रभु में पुण्यशील लोग निवास करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

शोचयः-रंहयः

यास्ते॑ शो॒चयो॒ रंह॑यो जातवेदो॒ याभि॑रापृ॒णासि॒ दिव॑म॒न्तरि॑क्षम्।
अ॒जं यन्त॒मनु॒ ताः सम॑ृण्वता॒मथेत॑राभिः शि॒वत॑माभि शृ॒तं कृ॑धि॥ ९॥

१. हे **जातवेदः**=उत्पन्न ज्ञानवाले उपासक! **यः**=जो **ते**=तेरी **शोचयः**=पवित्रताएँ व ज्ञानदीप्तियाँ तथा **रंहयः**=वेगवती क्रियाएँ हैं, **याभिः**=जिनसे तू **दिवम्**=मस्तिष्करूप द्युलोक को तथा **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को **आपृणासि**=परिपूरित करता है, ज्ञान दीप्तियों से मस्तिष्क को तथा क्रियासङ्कल्पों से हृदयान्तरिक्ष को तू व्याप्त करता है। **ताः**=वे सब ज्ञानदीप्तियाँ व वेगवती क्रियाएँ **अजम् अनु यन्तम्**=प्रभु के पीछे चलते हुए तुझे **समृण्वताम्**=सम्यक् प्राप्त हों। प्रभु की उपासना ही तुझे इन ज्ञानदीप्तियों को तथा वेगवती क्रियाओं को प्राप्त कराएगी। २. हे उपासक! **अथ**=अब इस प्रभु के उपासन के बाद, तू **इतराभिः**=अन्य विलक्षण **शिवतमाभिः**=अत्यन्त कल्याणकारिणी ज्ञानदीप्तियों व वेगवती क्रियाओं से **शृतं कृधिः**=अपने को पूर्ण परिपक्व बना।

भावार्थ—प्रभु की उपासना का ही यह **परि**णाम होता है कि हम ज्ञानदीप्तियों से मस्तिष्क को परिपूर्ण कर पाते हैं और क्रियासंकल्पों से हृदयान्तरिक्ष को। इन विलक्षण दीप्तियों व क्रियाओं से ही हम अपने को परिपक्व करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पुनः पितरों के प्रति अर्पण व प्रव्रजित होने की तैयारी

अव॑ सृज॒ पुन॑रग्ने पि॒तृभ्यो॒ यस्त॒ आहु॑त॒श्चर॑ति स्व॒धावा॑न्।
आयु॒र्वसा॑न॒ उप॑ यातु॒ शेष॒ः सं ग॑च्छतां त॒न्वा॑ सु॒वर्चा॑ः॥ १०॥

१. माता-पिता अपने सन्तानों को पितरों (आचार्यों) के प्रति सौंपते हैं। आचार्य उन्हें ज्ञानपरिपक्व करके घर वापस भेजते हैं। यहाँ घरों में देवों के साथ अनुकूलता रखते हुए यह स्वस्थ शरीर बनता है, उपासना द्वारा हृदय में प्रभु-दर्शन करता है। अब गृहस्थ को सुन्दरता से समाप्त करके हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **पुनः**=फिर, वनस्थ होता हुआ, **पितृभ्यः अवसृज**=वनस्थ पितरों के लिए अपने को देनेवाला बन। इनके चरणों में ही तू अपने को संन्यास के लिए तैयार कर पाएगा। उस पितर के लिए तू अपने को अर्पित कर **यः**=जो **ते**=तेरे द्वारा **आहुतः**=आहुत हुआ था, जिसके प्रति तूने अपना अर्पण किया है, वह **स्वधावान् चरति**=आत्मतत्त्व को धारण करनेवाला होकर सब क्रियाएँ करता है। तुझे भी वह आत्मतत्त्व को धारण के मार्ग पर ले-चलेगा। २. अब स्वधावान् बनकर तू प्रव्रजित होता है, और **आयुः वासना**=उत्कृष्ट-सशक्त व दीप्त-जीवन को धारण करता हुआ **शेषः उप यातु**=अवशिष्ट भोजन को ही (शेषस्=अवशिष्ट) तू प्राप्त करनेवाला हो। सब खा चुकें तब बचे हुए को ही तूने भिक्षा में

प्राप्त करना (विधूमे सन्नमुसले)। **सुवर्चाः**=संयम द्वारा उत्तम वर्चस् शक्तिवाला तू **तन्वा संगच्छताम्**=शक्तियों के विस्तार से संगत हो। परिपक्व फल की तरह तू अधिक और अधिक दीप्त होता चल।

भावार्थ—गृहस्थ के बाद वनस्थ होने के समय हम उन पितरों के सम्पर्क में आएँ जो हमें आत्मदर्शन के मार्ग पर ले-चलें। अब अन्त में संन्यस्त होकर हम गृहस्थों के भुक्तावशिष्ट भोजन को ही भिक्षा में प्राप्त करके, किसी पर बोझ न बनते हुए सुवर्चस् बनें, शक्तियों के विस्तारवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सारमेयो श्वानौ

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥ ११॥

१. हमारे जीवन में 'काम-क्रोध' उन दो श्वानों के समान हैं जो **सारमेयौ**=सरमा के पुत्र हैं। 'सृ गतौ' गति के पुत्र हैं, अर्थात् अत्यन्त चञ्चल हैं। **श्वानौ**=(श्वि वृद्धौ) ये निरन्तर बढ़ते ही चलते हैं। 'काम' उपभोग से शान्त न होकर बढ़ता ही जाता है, जैसेकि हवि के द्वारा 'अग्नि'। **चतुरक्षौ**=ये चार आँखेंवाले हैं। इन्हें ज़रा-सा अवसर मिला और इन्होंने हमारे घर पर आक्रमण किया। हम सदा सावधान रहेंगे और उत्तम कर्मों में लगे रहेंगे तभी इनसे बच सकेंगे। **शबलौ**=ये रंगबिरंगे हैं—नानारूपों में ये प्रकट होते हैं। प्रभु कहते हैं कि **साधुना पथा**=उत्तम मार्ग से इनको **अतिद्रव**=लाँघ जा। सदा उत्तम कर्मों में लगे रहने से ही हम इन्हें जीत पाते हैं। २. **अधा**=और अब **सु-विदत्रान्**=उत्तम ज्ञान के द्वारा त्राण करनेवाले **पितॄन्**=पितरों की **अपीहि**=ओर आनेवाला हो। इनका सत्संग तुझे ज्ञान की रुचिवाला तथा उत्तम कर्मों को करनेवाला बनाएगा। उन पितरों के समीप उपस्थित हो **ये**=जोकि **यमेन**=सर्वनियन्ता प्रभु के **सधमादं मदन्ति**=साथ आनन्द का अनुभव करते हैं। इन प्रभु के उपासकों के सम्पर्क में तू भी प्रभु के उपासन की वृत्तिवाला बनेगा। हम ज्ञानी (सुविदत्रान्) रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त (पितॄन्) प्रभु के उपासकों (यमेन सधमादम्) के सम्पर्क में उन-जैसे ही बनेंगे। इनके सम्पर्क में हम काम, क्रोधरूप यम के श्वानों को लाँघ सकेंगे।

भावार्थ—हम ज्ञानी, कर्मशील, उपासक पितरों के सम्पर्क में इन-जैसे ही बनते हुए, सदा सुपथ से चलते हुए, काम, क्रोध को जीतनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उपादेय काम व मन्यु

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा।
ताभ्यां राजन्परि धेह्येनं स्वस्त्य ꣳस्मा अनमीवं च धेहि॥ १२॥

१. हे **यम**=सर्वनियन्ता प्रभो! **यौ**=जो **ते**=आपके **श्वानौ**=गति के द्वारा वृद्धि के कारणभूत **रक्षितारौ**=हमारे जीवन का रक्षण करनेवाले, **चतुरक्षौ**=चार आँखोंवाले, अर्थात् सदा सावधान, **पथिरक्षी**=मार्ग के रक्षक **नृचक्षसा**=(चक्ष् to look after) मनुष्यों का पालन करनेवाले काम व क्रोध (मन्यु) हैं, **ताभ्याम्**=उन दोनों के लिए **एनम्**=इस उपासक को **परिधेहि**=धारण कर, २. **च**=और हे **राजन्**=संसार के शासक व व्यवस्थापक प्रभो! इन रक्षक काम व क्रोध के द्वारा **अस्मै**=इस पुरुष के लिए **स्वस्ति**=उत्तम स्थिति को—कल्याण को तथा **अनमीवम्**=नीरोगता को

धेहि=धारण कीजिए। काम-क्रोध प्रबल हुए तो ये मनुष्य को समाप्त कर देनेवाले होते हैं। 'काम' शरीर को जीर्ण करता है तो क्रोध मन को अशान्त कर देता है। ये ही काम-क्रोध सीमा के अन्दर होने पर मनुष्य के रक्षक व पालक हो जाते हैं। काम उसे वेदाधिगम व वैदिक कर्मयोग में लगाकर उत्तम स्थिति प्राप्त कराता है और मन्यु (मर्यादित क्रोध) उसे उपद्रवों से आक्रान्त नहीं होने देता। फुफकारता हुआ सर्प चीटियों व क्षुद्र पशुओं से आक्रान्त नहीं होता—इसीप्रकार मन्युवान् होते हुए हम भी 'अनमीव' बने रहते हैं।

भावार्थ—वे काम-क्रोध जो अमर्यादित रूप में विनाशक होते हैं, वे मर्यादित होते हुए हमें 'स्वस्तिवान् व अनमीव' बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'भद्र असु' के प्रदाता यमदूत

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥ १३॥

१. गतमन्त्रों में वर्णित 'काम-क्रोध' **उरूणसौ**=बड़ी नाकवाले हैं—सेवन से ये बढ़ते ही जाते हैं अथवा (णस् कौटिल्ये गतौ च) ये बड़ी कुटिल गतिवाले हैं। **अ-सुतृपौ**=ये कभी अच्छी प्रकार तृप्त नहीं हो जाते—बढ़ते ही जाते हैं (भूय एवाभिवर्धते) **उदुम्बलौ**=(उरुबलौ) अत्यन्त प्रबल हैं। अपराजित होते हुए ये **यमस्य दूतौ**=यम के दूत हैं—हमें मृत्यु के समीप ले-जाते हैं। ये यमदूत **जनान् अनुचरतः**=सदा मनुष्यों के पीछे चलते हैं। ये किसी का पीछा छोड़ते नहीं। २. अब यदि ये प्रबल हो जाएँ तो ये हमें समाप्त कर देते हैं, अतः इन्हें ज्ञानाग्नि द्वारा भस्मीभूत करना आवश्यक है। यदि हम इन्हें पराजित व संयत कर पाये तो **तौ**=वे काम और क्रोध **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **पुनः**=फिर **अद्य**=अज **इह**=यहाँ **भद्रं असुम्**=शुभ जीवन को **दाताम्**=दें और हम **दृशये सूर्याय**=दीर्घकाल तक सूर्यदर्शन करनेवाले हो सकें—दीर्घजीवी बनें।

भावार्थ—काम-क्रोध अत्यन्त प्रबल हैं। वशीभूत हुए-हुए ये हमारे लिए भद्र जीवन दें, जिससे हम दीर्घकाल तक सूर्यदर्शन करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सोम-घृत-मधु

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात्॥ १४॥

१. **एकेभ्यः**=कुछ पितरों से **सोमः**=सोम (यत् सामानि सोम एभ्यः पवते। तै० २.१०.१) साममन्त्र—उपासना मन्त्र **पवते**=प्रवाहित होते हैं। **एके**=कई पितर **घृतम्**=(यद् यजूंषि घृतस्य कूल्याः। तै० २.१०.१) यजुर्मन्त्रों को **उपासते**=उपासित करते हैं, **येभ्यः**=जिससे **मधु प्रधावति**=(यद् अथर्वांगिसो मधोः कूल्याः तै० २.१०.१) अथर्वमन्त्र गतिवाले होते हैं। यह उपासक **चित्**=निश्चय से **तान् एव**=उनके प्रति ही **अपि गच्छतात्**=जानेवाला हो। २. जिन पितरों से साममन्त्र प्रवाहित होते हैं उनके सम्पर्क में यह साधक भी उपासना की वृत्तिवाला बनेगा। यजुर्मन्त्रों के उपासकों के सम्पर्क में यह भी यज्ञशील होगा तथा अथर्वमन्त्रों में गतिवालों के सम्पर्क में यह भी अथर्वा (स्थिरवृत्ति) का बनता हुआ प्रभु को प्राप्त करनेवाला होगा।

भावार्थ—हम 'उपासक, यज्ञशील, स्थिरवृत्तिवाले' पितरों के सम्पर्क में आएँ और हम भी 'सोम-घृत-मधु' के उपासक बनें। साम, यजुः व अथर्वमन्त्रों को अपनानेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ऋत-तप व ज्ञान

ये चित्पूर्वं ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात्॥ १५॥

१. **ये**=जो **चित्**=निश्चय से **पूर्वे**=अपना पूरण करनेवाले हैं, **ऋत-साताः**=ऋत का सम्भजन करनेवाले—बड़े व्यवस्थित जीवनवाले (ऋत् right), **ऋतजाताः**=(ऋत्=यज्ञ) यज्ञों में ही प्रादुर्भूत हुए-हुए, अर्थात् सदा यज्ञशील हैं, **ऋतावृधः**=सत्य के द्वारा (ऋत्=सत्य) वृद्धि को प्राप्त करनेवाले हैं, उन **ऋषीन्**=तत्त्वद्रष्टा, **तपस्वतः**=तपस्वी **तपोजान्**=तप में ही प्रादुर्भूत हुए-हुए, अर्थात् सदा तपस्वी पितरों को ही, हे **यम**=सर्वनियन्ता प्रभो! यह साधक **अपिगच्छतात्**=प्राप्त होनेवाला हो। २. ऐसे पितरों के सम्पर्क में यह भी 'ऋत व तप' को अपनाता हुआ ऋषि (तत्त्वद्रष्टा) बन पाये।

भावार्थ—हम उन पितरों के सम्पर्क में आएँ जिनमें 'ऋत, तप व ज्ञान' का निवास है। इनके सम्पर्क में हम भी ऐसे ही बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

महान् तप

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्व᳚र्ययुः।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात्॥ १६॥

१. **तपसा**=तप के द्वारा **ये**=जो **अनाधृष्याः**=काम, क्रोध, लोभरूप शत्रुओं से धर्षण के योग्य नहीं होते, **तपसा**=तप के द्वारा **ये**=जो **स्वः ययुः**=आत्मप्रकाश को प्राप्त करते हैं। **ये**=जो **महः तपः**=महान् तप **चक्रिरे**=करते हैं, **चित्**=निश्चय से **तान् एव**=उन पितरों के ही समीप यह **अपिगच्छतात्**=प्राप्त हो। २. उन पितरों के सम्पर्क में तपस्वी होता हुआ यह भी शत्रुओं से अधर्षणीय और आत्मज्योति को प्राप्त करनेवाला बने।

भावार्थ—तप के द्वारा शत्रुओं से अधर्षणीय व तप के द्वारा आत्मज्योति के द्रष्टा महान् तपस्वी पितरों के सम्पर्क में हम भी तपस्वी बनते हुए शत्रुओं से अधर्षणीय और आत्मदर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

योद्धा व दाता

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात्॥ १७॥

१. **ये**=जो **शूरासः**=शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले वीर **प्रधनेषु**=(**प्रकीर्णानि धनानि अस्मिन्**) प्रकृष्ट धनों की प्राप्ति के साधनभूत संग्रामों में **युध्यन्ते**=युद्ध करते हैं और **ये**=जो इन संग्रामों में **तनूत्यजः**=शरीरों को छोड़ने के लिए उद्यत होते हैं **वा**=अथवा **ये**=जो पितर **सहस्रदक्षिणः**=हज़ारों का दान देनेवाले हैं, **तान् चित् एव**=उन पितरों को ही निश्चय से यह **अपिगच्छतात्**=प्राप्त हो।

भावार्थ—वीर योद्धाओं व दानवीरों के सम्पर्क में हम भी संग्राम से मुख न मोड़नेवाले वीर व दानवीर बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सहस्त्रणीथाः कवयः

सहस्त्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात्॥ १८॥

१. **ये**=जो **सहस्त्रणीथाः**=(सहस्रनयनाः) हज़ारों ज्ञानचक्षुओंवाले **कवयः**=क्रान्तदर्शी, ज्ञानी **सूर्यम् गोपायन्ति**=ज्ञानसूर्य को अपने में सुरक्षित करते हैं, उन **ऋषीन्**=तत्त्वद्रष्टा **तपस्वतः**=तपस्वी **तपोजान्**=तप के लिए ही मानो प्रादुर्भूत हुए-हुए पितरों को, हे **यम**=सर्वनियन्ता प्रभो! यह साधक **अपिगच्छतात्**=प्राप्त हो।

भावार्थ—तपस्वी व ज्ञानी पितरों के सम्पर्क में हम भी तप व ज्ञान की साधना करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदागायत्री** ॥

'स्योना' पृथिवी

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी।
यच्छास्मै शर्म सप्रथाः॥ १९॥

१. हे **पृथिवि**=मातृभूतभूमे! तू **अस्मै**=उल्लिखित प्रकार से साधना करनेवाले के लिए **स्योना**=सुखकारिणी **भव**=हो। **अनृक्षरा**=तू इसके लिए कण्टकरहित हो अथवा (अ नृक्षरा) मनुष्यों (सन्तानों) का विनाश करनेवाली न हो। **निवेशनी**=तू इसके लिए निवेश देनेवाली हो और **सप्रथाः**=विस्तार से युक्त होती हुई तू **शर्म यच्छ**=सुख देनेवाली हो।

भावार्थ—उत्तम पितरों के सम्पर्क में साधनामय जीवन बितानेवाले पुरुष के लिए यह पृथिवी सुख देनेवाली होती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विशाल व सम्बाधाशून्य घरों में पितृयज्ञ का अनुष्ठान

असम्बाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व।
स्वधा याश्चकृषे जीवन्तास्ते सन्तु मधुश्चुतः॥ २०॥

१. हे पुरुष! तू **पृथिव्याः**=पृथिवी के **असम्बाधे**=पीड़ा व भय से रहित—सम्बाधाशून्य **उरौ लोके**=बड़े विशाल लोक में **निधीयस्व**=निवास कर। तेरा निवासस्थान बाधाओं से शून्य व विशाल हो। २. **जीवन्**=जीता हुआ—प्राणों का धारण करता हुआ तू **याः**=जिन **स्वधाः**=स्वधाओं को—वृद्ध माता-पिता के लिए आदरपूर्वक अन्न-प्रदानों को (पितृभ्यः स्वधा) **चकृषे**=करता है, **ताः**=वे सब स्वधाएँ **ते**=तेरे लिए **मधुश्चुतः सन्तु**=मधु को क्षरित करनेवाली—आनन्द-रस प्रवाहित करनेवाली हों। वृद्ध माता-पिता से दिया गया आशीर्वाद तुम्हारी समृद्धि व आनन्द का कारण बने।

भावार्थ—हमारे घर विशाल व सम्बाधाशून्य हों। उनमें हम पितरों के लिए श्रद्धापूर्वक अन्नों को प्राप्त कराएँ। यह पितृयज्ञ हमारे जीवनों को मधुर बनाये।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'स्योनाः शग्माः' वाताः (शान्ति+शक्ति)

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान्गृहाँ उप जुजुषाण एहि।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः॥ २१॥

१. हे साधक! **मनसा**=मन से **ते मनः ह्वयामि**=तेरे मन को पुकारता हूँ, अर्थात् घरों में तुम्हारे मन परस्पर मिले हुए हों। एक का मन दूसरे के मन को पुकारनेवाला हो। **इह**=यहाँ **इमान् गृहान्**=इन घरों को **जुजुषाणः**=प्रीतिपूर्वक सेवन करता हुआ **उप एहि**=समीपता से प्राप्त हो। जब घरों में सबके मन मिले होते हैं—जब इनमें सौमनस होता है तब मनुष्य घर में आने के लिए उत्सुक रहता है—घर से दूर नहीं होता। २. इन घरों में रहता हुआ तू **पितृभिः संगच्छस्व**= पितरों के साथ सम्पर्कवाला हो—उनकी सेवा करता हुआ सदा उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर। **यमेन**=सर्वनियन्ता प्रभु से **सम्**=संगत हो। प्रभु की उपासना ही तो तुझे शक्ति, उत्साह व पवित्रता प्राप्त कराएगी। इसप्रकार जीवन बिताने पर **त्वा**=तेरे लिए **स्योनाः**=सुखकर **शग्माः**=शक्तिप्रद (शक्) **वाताः**=वायु **उपवान्तु**=बहें। तेरे लिए सभी वातावरण सुख व शक्ति को देनेवाला हो।

भावार्थ—घरों में परस्पर मन मिले हों। इन घरों में प्रीतिपूर्वक निवास करते हुए हम पितरों का आदर करें और प्रभु का उपासन करें—पितृयज्ञ व ब्रह्मयज्ञ को सम्यक् करनेवाले हों। ऐसा होने पर सारा वातावरण हमारे लिए शान्ति (सुख) व शक्ति को देनेवाला होगा।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उदवाहा मरुतः

उत्त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः।
अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति॥ २२॥

१. **उदप्रुतः**=जल के साथ गति करनेवाले **उदवाहाः**=जल का वहन करनेवाले ये **मरुतः**=वृष्टि लानेवाले वायु **त्वा**=हे साधक! तुझे **उद् वहन्तु**=उत्कृष्ट स्थिति में प्राप्त कराएँ। ठीक समय पर वृष्टि होकर जीवन के लिए अन्नादि की किसी प्रकार से कमी न हो। २. **अजेन**= (अज गतिक्षेपणयोः) गति के द्वारा व वृष्टिजल के क्षेपण के द्वारा **शीतंकृण्वन्तः**=सर्दी को करते हुए ये मरुत् **वर्षेन**=वृष्टि से **उक्षन्तु**=भूमि को सिक्त करें, **बाल इति**=जिससे (बल जीवने) सब प्राणियों को जीवनधारण के लिए अन्न प्राप्त हो सके।

भावार्थ—वृष्टि लानेवाले वायु (मरुत्) ठीक से बहते हुए हमारी स्थिति को उत्कृष्ट बनाएँ। ये वृष्टि द्वारा ग्रीष्म के सन्ताप को दूर करने के साथ अन्नोत्पादन का साधन बनते हुए हमारे लिए जीवनप्रद हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

क्रत्वे दक्षाय जीवसे

उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
स्वान्गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव॥ २३॥

१. मैं तेरे लिए **आयुः उद् अह्वम्**=आयु को पुकारता हूँ—तुझे आयुष्यवृद्धि का उपदेश करता हूँ, जिससे तू **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए हो, **क्रत्वे**=यज्ञादि कर्मों को करने के लिए होवे, **दक्षाय**=उन्नति व दक्षता के लिए होवे। अथवा 'प्राणो वै दक्षः, अपानः क्रतुः' (तै० २.५.२.४) इस वाक्य के अनुसार प्राण और अपान के लिए होवे और इसप्रकार **जीवसे**=दीर्घजीवन के लिए होवे। २. **ते मनः**=तेरा मन **स्वान् गच्छतु**=अपने बन्धुजनों के प्रति जाए—उनके प्रति प्रेम भी तुझे दीर्घजीवन की प्रेरणा दे। **अधा**=तथा **पितॄन् उपद्रव**=पितरों के समीप तू प्राप्त होनेवाला हो—उनके चरणों में बैठकर अपने कर्त्तव्यों का उपदेश ग्रहण करनेवाला बन।

भावार्थ—हम आयुष्यवृद्धि के उपायों को जानकर दीर्घजीवन धारण करें। हमारा जीवन यज्ञमय हो—उन्नतिपथ पर हम आगे बढ़ें। अपनों के प्रति कर्त्तव्यों को निभानेवाले हों और बड़ों के चरणों में बैठकर उनसे उपदेश ग्रहण करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिपदासमविषमाऽऽर्षीगायत्री**॥

'मन व शरीर' की स्वस्थता

मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते मा तें हास्त।
तन्वः किं चनेह॥ २४॥

१. हे पुरुष! **ते मनः मा हास्त**=तेरा मन तुझे न छोड़ जाए—तेरा मन सदा सोत्साह बना रहे। **इह**=यहाँ **असोः**=प्राणों का कुछ भी अंश **मा (हास्त)**=तुझे न छोड़ दे। **अङ्गानाम्**=अंगों का भी कोई अंश **मा**=तुझे न छोड़े—तेरा कोई भी अंग विकृत न हो जाए। **ते**=तेरे **रसस्य**=शरीरस्थ रुधिरादि का भी कोई अंग **मा**=तुझे न छोड़े। २. संक्षेप में, **ते तन्वः**=तेरे शरीर का **किंचन मा (हास्त)**=यहाँ कोई भी भाग तुझसे पृथक् न हो। तू अरिष्ट सर्वांग बना रहे।

भावार्थ—हम आयुष्य के नियमों का ज्ञान प्राप्त करके इसप्रकार युक्ताहारविहार बनें कि न तो हमारा मन हतोत्साह हो और न ही किसी अंग में कोई विकृति व कमी आये।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यमराजसु पितृषु

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही।
लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु॥ २५॥

१. हे साधक! **त्वा**=तुझे **वृक्षः**=यह संसार-वृक्ष (वृक्ष वरणे)—वरणीय (उत्तम) संसार **मा सम्बाधिष्ट**=बाधा पहुँचानेवाला न हो। यह **देवी**=दिव्यगुणों से युक्त **मही**=महनीय (पूजनीय) **पृथिवी**=भूमिमाता **मा**=मत बाधा पहुँचाए। यह संसार तेरे अनुकूल हो, विशेषकर यह पृथिवी तुझे सब महनीय दिव्य पदार्थों को प्राप्त करके अधिकतम बढ़ानेवाली हो, जैसे माता पुत्र को सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराके उसकी उन्नति की हेतु होती है। २. हे साधक! इसप्रकार बड़ा होकर तू **यमराजसु**=संयमी व व्यवस्थित और दीप्त जीवनवाले **पितृषु**=पितरों में—उनके चरणों में **लोकं वित्त्वा**=प्रकाश (आलोक) को प्राप्त करके **एधस्व**=सतत वृद्धि को प्राप्त हो।

भावार्थ—यह संसार हमारे अनुकूल हो। महनीय पृथिवी हमें दिव्य पदार्थों को प्राप्त कराके उन्नत करे। हम संयमी व दीप्त जीवनवाले पितरों से प्रकाश प्राप्त करके वृद्धि प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

क्षीणता का उचित उपचार

यत्ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः।
तत्ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु॥ २६॥

१. **यत्**=जो **ते**=तेरा **अङ्गम्**=अंग **पराचैः अतिहितम्**=(पराङ्मुखम् अतीत्य स्थितम् सा०) उलटकर अपने स्थान से विचलित हो गया है **वा**=या **यः**=जो **ते**=तेरा **प्राणः अपानः**=प्राण और अपान **परा इतः**=तुझसे दूर चला गया है, अर्थात् प्राणापान शक्ति में कमी आ गई है, **तत्**=उसको **ते**=तेरे **सनीडा**=समान घरवाले **पितरः**=पितर (रक्षक) लोग **संगत्य**=मिलकर—परस्पर विचार करके—**घासाद्**=(अद्यते भुज्यतेऽस्मिन् इति घासः शरीरम्) शरीर के उद्देश्य से—शरीर को ठीक

करने के लक्ष्य से—**घासम्**=भोजन को **पुनः**=फिर **आवेशयन्तु**=शरीर में प्रविष्ट कराएँ।

भावार्थ—अंग भंग हो जाए, अथवा प्राणापान शक्ति में कमी आ जाए तो बड़े, अनुभवी लोग मिलकर शरीर को ठीक करने के उद्देश्य से उचित भोजन की व्यवस्था करें। औषध से भी अधिक महत्त्व इस पथ्य भोजन का है। पथ्य के अभाव में औषध तो व्यर्थ ही हो जाती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

आचार्यकुल में प्रवेश तथा वहाँ से समावर्त्तन

अपेमं जीवा अरुधन्गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून्पितृभ्यो गमयां चकार॥ २७॥

१. **जीवाः**=जीवन धारण करनेवाले सब गृहस्थ **इमम्**=इस अपने सन्तान को **गृहेभ्यः**=घरों से **अप अरुधन्**=दूर ही निरुद्ध करते हैं। घरों से दूर आचार्यकुलों में अपने इस सन्तान को रखते हैं। **तम्**=उस सन्तान को **इतः ग्रामात्**=यहाँ ग्राम से **परि निर्वहत**=दूर बाहर आचार्यकुल में प्राप्त कराओ। माता-पिता कहें—अब तुझे 'मृत्यवे त्वा ददामीति' मृत्यु (आचार्य) के लिए सौंपते हैं। मोहवश सन्तानों को घरों में ही रक्खे रखना ठीक नहीं। २. **मृत्युः**=(आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः०) यह आचार्य **यमस्य**=उस सर्वनियन्ता प्रभु का **दूतः आसीत्**=दूत है—सन्देशहर है। यह विद्यार्थी के लिए ज्ञान का सन्देश सुनाता है। **प्रचेताः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाला है। ज्ञान ही तो इस आचार्य की वास्तविक सम्पत्ति है। यह विद्यार्थियों को खूब शक्तिसम्पन्न व ज्ञानी बनाकर इन **असून्**=(असु=प्राणशक्ति+प्रज्ञा) प्राणशक्ति व प्रज्ञा के पुञ्जभूत स्नातकों को **पितृभ्यः**=माता-पिता के लिए **गमयांचकार**=भेजता है। यही इनका समावर्त्तन होता है।

भावार्थ—गृहस्थ सन्तानों को आचार्यकुलों में भेज दें। आचार्य उन्हें संयमी विद्वान् बनाकर पुनः पितरों के समीप प्राप्त करानेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पितरों के रूप में दस्यु

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात्प्र धमाति यज्ञात्॥ २८॥

१. **ये**=जो **दस्यवः**=(दस् उपक्षये) हमारा विनाश करनेवाले, **पितृषु प्रविष्टाः**=पितरों की श्रेणी में किसी प्रकार प्रविष्ट हो गये हैं, **ज्ञातिमुखाः**=(ज्ञातीनां मुखमिव मुखं येषाम्) हमारे सम्बन्धी प्रतीत होनेवाले **अहुतादः**=यज्ञों को किये बिना सब-कुछ खा जानेवाले **चरन्ति**=वहाँ समाज में विचरते हैं। **ये**=जो **परापुरः**=(पिण्डोदकं परापृणन्ति=पुत्राः, निपृणन्ति=पौत्राः, नियमेन पृणन्ति) हमारे पुत्रों को तथा **निपुरः**=पौत्रों को **भरन्ति**=अपहृत कर लेते हैं, अर्थात् उनके जीवनों को बिगाड़ देते हैं। **अग्निः**=राष्ट्र का संचालक **तान्**=उन दुष्टों को **अस्मात् यज्ञात्**=इस राष्ट्रयज्ञ से (संघ से बने हुए राष्ट्र से) **प्रधमाति**=बाहर करदे (धमतिर्गतिकर्मा)। २. राजा का यह कर्त्तव्य है कि जो पितर अपना कर्त्तव्यपालन न करें, उन्हें दण्डित करे। इनके लिए सर्वोत्तम दण्ड यही है कि इन्हें राष्ट्र से निष्कासित कर दिया जाए। ये पितर वे हैं जोकि रक्षणात्मक कार्य के स्थान पर भक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। बन्धु का रूप धारण करके सब-कुछ खा जाते हैं और हमारे पुत्रों व पौत्रों का जीवन बिगाड़ देते हैं।

भावार्थ—राजा का यह कर्त्तव्य है कि दुष्ट पितरों को दण्डित करे, उन्हें राष्ट्र से निर्वासित ही कर दे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, पितरः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

स्वाः पितरः

सं वि॑शन्त्वि॒ह पि॒तरः॒ स्वा नः॑ स्यो॒नं कृ॒ण्वन्तः॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑।
तेभ्यः॑ शकेम ह॒विषा॒ नक्ष॑माणा॒ ज्योग्जीव॑न्तः श॒रदः॑ पु॒रूचीः॥ २९॥

१. **इह**=यहाँ—इस जीवन में **नः**=हमारे लिए **स्वाः पितरः**=अपने ही पितर—जो वानप्रस्थाश्रम में गये हुए 'पिता, पितामह व प्रपितामह' **संविशन्तु**=घरों में सम्यक् प्रविष्ट हों। समय-समय पर हमारे बुलाने पर ये अवश्य आएँ। ये पितर **स्योनं कृण्वन्तः**=सुख प्रदान करते हुए **आयुः प्रतिरन्त**=हमारे आयुष्य को बढ़ाते हैं। २. **तेभ्यः**=अनके लिए **हविषा**=यज्ञिय भोजन से **नक्षमाणाः**=प्राप्त होते हुए हम **शकेम**=शक्तिशाली बनें। हम **ज्योग्जीवन्तः**=दीर्घकाल तक जीते हुए **पुरुचीः शरदः**=अत्यन्त गतिशील वर्षोंवाले हों (पुरु अञ्च्)। खाट पर लेटे हुए न हों। अकर्मण्य जीवन, जीवन नहीं है।

भावार्थ—हमारे वनस्थ पितर समय-समय पर घरों पर आएँ। वे उचित परामर्शों द्वारा हमारे जीवन को सुखी करें, हमें दीर्घजीवी बनाएँ और हमारा जीवन अत्यन्त गतिमाय हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अजीवनों का पालन

यां ते॑ धे॒नुं नि॑पृ॒णामि॒ यमु॑ ते क्षी॒र ओ॑द॒नम्।
तेना॒ जन॑स्यासो भ॒र्ता योऽत्रास॒दजी॑वनः॥ ३०॥

१. हे वनस्थ पितः! **याम्**=जिस **ते**=आपके लिए **धेनुम्**=गौ को **निपृणामि**=देता हूँ, **उ**=और **यम्**=जिस **क्षीरे आदेनम्**=दूध में पकाये गये भोजन को—मिष्टान्नादि को **ते**=आपके लिए देता हूँ, **तेन**=उस गौ व क्षीरान्नों से उस **जनस्य**=मनुष्य का आप **भर्ता असः**=भरणकरनेवाले हो, **यः**=जो **अत्र**=यहाँ **अजीवनः असत्**=जीविका से रहित हो—जिसमें जीविका के अपार्जन की क्षमता न हो।

भावार्थ—लूले, लंगड़ें व्यक्ति नगर में ही भीख न माँगते रहें। इनके वनों में आश्रम हों। वहाँ वानप्रस्थ पितरों के द्वारा इनकी व्यवस्था की जाए। इन वानप्रस्थ पितरों के लिए नागरिक आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कराते रहें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आदर्श पितर

अश्वा॑वती॒ं प्र त॑र॒ या सु॒शेवा॒र्क्षाकं॑ वा प्र॒तरं॒ नवी॑यः।
यस्त्वा॑ ज॒घान॒ वध्यः॒ सो अ॑स्तु॒ मा सो अ॒न्यद्वि॑दत भाग॒धेय॑म्॥ ३१॥

१. हे साधक! तू **अश्वावतीम्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाली जीवनस्थिति को **प्रतर**=बढ़ा, **या सुशेवा**=जो उत्तम कल्याण प्रदान करनेवाली है। **वा**=तथा **ऋक्षाकम्**=(ऋष्=to kill) वासनाओं के संहारक ज्ञान को **प्रतरम्**=खूब ही बढ़ा, जो ज्ञान **नवीयः**=अतिशयेन स्तुत्य है (नु स्तुतौ)। कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों का ठीक विकास व प्रयोग ही जीवन को सुन्दर बनाता है। २. **यः**=जो वासना **त्वा**=तुझे **जघान**=नष्ट करती है, **सः**=वह **वध्यः अस्तु**=नाश करने योग्य हो। 'काम-क्रोध' आदि को तू विनष्ट करनेवाला बन। अन्यथा ये तेरे विनाश का कारण बनेंगे। **सः**=काम-क्रोध-लोभरूप शत्रु **अन्यत् भागधेयम्**=वध से अन्य भाग को **मा विदत**=मत प्राप्त हो, अर्थात्

इन्हें तो नष्ट ही कर डाला जाए। इनके लिए कोई अन्य विकल्प न हो।

भावार्थ—हम कर्मेन्द्रियों को प्रशस्त करें, ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाएँ। 'काम-क्रोध' आदि विनाशक शत्रुओं को विनष्ट करें। ऐसा करने पर ही हम उत्तम पितर बन पाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

परोवरः यमः

यमः परोऽवरो विवस्वान्ततः परं नाति पश्यामि किं चन।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान॥ ३२॥

१. प्रभुस्मरण ही हमें उत्तम जीवनवाला बनाता है, अतः साधक प्रभुस्मरण करता हुआ कहता है कि—**यमः**=सर्वनियन्ता प्रभु **परः अवरः**=दूर-से-दूर है और समीप-से-समीप है। 'दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च'। **विवस्वान्**=वह ज्ञान की किरणोंवाला है—अपनी ज्ञानकिरणों से साधकों के हृदयान्धकार को नष्ट करता है। **ततः परम्**=उस प्रभु से उत्कृष्ट मैं **किंचन न अतिपश्यामि**=किसी भी वस्तु को नहीं देखता हूँ। वह प्रत्येक गुण की चरमसीमा है। २. यह **मे अध्वरः**=मेरा यज्ञ **यमे अधिपश्यामि**=उस नियन्ता प्रभु में ही स्थित है—प्रभु के आधार से ही इस यज्ञ की पूर्ति होती है। 'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च'। वस्तुतः प्रभु ही 'होता' है, हम तो बीच में निमित्तमात्र बनते हैं। ये **विवस्वान्**=सूर्यसम दीप्त प्रभु **भुवः**=सब लोकों को **अन्वाततान**=अनुकूलता से विस्तृत किये हुए हैं। इन लोकों को वे प्रभु ही विस्तृत करनेवाले हैं। उस प्रभु का प्रकाश ही लोकों में सर्वत्र फैला हुआ है।

भावार्थ—सर्वनियन्ता प्रभु सर्वव्यापक हैं, प्रभु से महान् और कुछ भी नहीं। प्रभु ही हमारे यज्ञों के पालक हैं और प्रभु ने ही सब लोकों को आलोकित किया हुआ है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सरण्यू के दो सन्तान

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः॥ ३३॥

१. **अमृताम्**=कभी नष्ट न होनेवाली—अथवा मृत्यु से बचानेवाली इस वेदवाणी को **मर्त्येभ्यः**=वासनाओं से आक्रान्त होकर विषयों के पीछे मरनेवाले मनुष्यों से **अपागूहन्**=दूर छिपाकर रखा जाता है। मर्त्य इसे प्राप्त नहीं कर सकता। यह अमृत वेदवाणी असंयत जीवनवाले पुरुष को प्राप्त नहीं होती। इस वेदवाणी को **सवर्णाम् कृत्वा**=(स-वर्णाम्) प्रभुवर्णन से युक्त करके **विवस्वते**=ज्ञानी पुरुष के लिए **अदधुः**=धारण करते हैं। 'सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति' इस वाक्य के अनुसार वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म ही है। २. जब एक ज्ञानी पुरुष इस वेदवाणी का धारण करता है तब यह **उत**=निश्चय से **अश्विनौ अभरत्**=प्राणापान का पोषण करती है, 'असुनीति' का—प्राणविद्या का प्रतिपादन करनेवाली यह वेदवाणी प्राणापान का पोषण क्यों न करेगी? **यत्**=जो **तत्**=वह प्राणापान का पोषण करनेवाली अमृता वेदवाणी **आसीत्**=थी, अर्थात् जब इसने हमारे प्राणापान की शक्तियों का वर्धन किया तो **सरण्यूः**=ज्ञान व कर्म से हमारा मेल करनेवाली इस वेदवाणी ने **उ**=निश्चय से **द्वा मिथुना**=दो युगलभूत 'नासत्या व दस्रा' को **जहात्**=जन्म दिया। ज्ञान ही नासत्य है—ज्ञान से सत्य का दर्शन होता है (न+असत्य); और कर्म ही दस्र है—कर्म से सब बुराइयों का संहार होता है (दसु उपक्षये)।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमारा इस 'सरण्यू' नामवाली वेदवाणी से सम्बन्ध हो और हमारे

जीवन में सत्य व पवित्रता का संचार हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चार पितर

ये निखा॑ता ये परो॑प्ता ये दग्धा ये चोद्धि॑ताः।
सर्वां॒स्तान॑ग्न आ व॑ह पितॄन्ह॒विषे॒ अत्त॑वे॥ ३४॥

१. **ये निखाता**=जो संयम की भूमि में निश्चय से दृढ़ तथा गाड़े गये हैं—जिन्होंने दृढ़ संयम से ब्रह्मचर्याश्रम में ज्ञान प्राप्त किया है। **ये परोप्ताः**=(परम् उप्तं येषाम्) जिन्होंने गृहस्थ में सन्तानोत्पत्ति के लिए उत्कृष्टरूप में बीजवपन किया है। **ये दग्धाः**=वानप्रस्थ में जिन्होंने अपने को ज्ञानाग्निदग्ध बनाया है **च**=और **ये**=जो संन्यस्त होकर **उद्धिताः**=संसार से ऊपर स्थापित हुए हैं (उत् हिताः)। हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **तान् सर्वान् पितॄन्**=उन सब पितरों को **हविषे अत्तवे**=इन्द्रियों के—सात्त्विक भोजनों के सेवन के लिए **आवह**=तू अपने समीप प्राप्त करा। इनका सम्पर्क हमें भी इनकी भाँति पवित्र बनाएगा।

भावार्थ—हमारे घरों पर संयत जीवनवाले ब्रह्मचारी, पवित्र गृहस्थ, ज्ञानाग्निदग्ध वानप्रस्थ व भौतिक क्षेत्र से ऊपर उठे हुए संन्यस्त पधारें। हम उनके लिए सात्त्विक भोजनों को प्राप्त कराएँ और उनकी सात्त्विक प्रेरणाओं से लाभान्वित हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अग्निदग्ध व अनग्निदग्ध' पितर

ये अ॒ग्निद॒ग्धा ये अन॑ग्निदग्धा॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते।
त्वं तान्वे॑त्थ॒ यदि॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धया॑ य॒ज्ञं स्वधि॑तिं जुषन्ताम्॥ ३५॥

१. ये **अग्निदग्धाः**=जो पितर अग्निविद्या में परिपक्व ज्ञानवाले वा निपुण हैं—जिन्होंने अग्नि आदि देवों का ज्ञान प्राप्त किया है। ये **अनाग्निदग्धः**=अथवा जो अग्निविद्या में निपुण नहीं भी हैं—जो आत्मचिन्तन में व समाज-स्वभाव के अध्ययन में लगे रहकर, विज्ञान की शिक्षा को बहुत महत्त्व नहीं दे पाये। ये सब पितर **दिवः मध्ये**=ज्ञान के प्रकाश में **स्वधया मादयन्ते**=आत्मतत्त्व के धारण से अत्यन्त हर्ष का अनुभव करते हैं। २. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञ प्रभो! यदि **त्वं तान् वेत्थ**=यदि आप उन्हें जानते हो—उनकी सुध लेते हो तो **ते**=वे **स्वधया**=आत्मधारणशक्ति के साथ **स्वधितिं यज्ञं जुषन्ताम्**=अपना धारण करनेवाले यज्ञ का सेवन करनेवाले हों। जब ये परमात्मा के बनते हैं तब स्वधा के साथ 'स्वधितियज्ञ' का सेवन करते हैं। ये आत्मतत्त्व का धारण करते हैं और यज्ञमय जीवनवाले होते हैं। यह यज्ञ इनका धारण करनेवाला होता है।

भावार्थ—अग्निविद्या में तथा समाजशास्त्र व आत्मविद्या में निपुण पितर ज्ञान के प्रकाश में आत्मतत्त्व के धारण से हर्ष का अनुभव करते हैं। प्रभु के प्रिय बनकर ये आत्मतत्त्व का धारण करते हैं तथा यज्ञमय जीवनवाले होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मर्यादित तप

शं त॑प॒ माति॑ तपो॒ अग्ने॒ मा त॒न्वं॑१ तपः॑।
वने॑षु शु॒ष्मो॑ अस्तु ते पृथि॒व्याम॑स्तु॒ यद्धरः॑॥ ३६॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी आचार्य (अग्निराचार्यस्तव)! इस विद्यार्थी को शान्त जीवनवाला बनाने

के लिए तपस्या में ले-चल, इसे **शं तप**=सुखकर तप करा, परन्तु **मा अति तपः**=मर्यादा से अधिक तप्त न करा। **तन्वं मा तपः**=इसके शरीर को संतप्त मत कर डाल। '**शरीरमबाधमानेन तपः आसेव्यम्**' शरीर को न पीड़ित करते हुए ही तो तप करना चाहिए। २. हे आचार्य! **वनेषु**=संभजनीय कर्मों में **ते**=आपका **शुष्मः**=बल **अस्तु**=हो तथा **यत्**=जो **हरः**=रोगों का हरण करनेवाला तेज है, वह **पृथिव्याम् अस्तु**=इस शरीररूप पृथिवी में हो। सेवनीय कर्मों को करते हुए हम शक्तिशाली बनें तथा शरीर में वह शक्ति हो जो हमें नीरोग बनाये रक्खे। आचार्य विद्यार्थी को ऐसा ही बनाने का यत्न करें।

भावार्थ—आचार्य विद्यार्थी को तपस्या की अग्नि में समुचितरूप से तप्त कराते हुए शान्त जीवनवाला बनाएँ। तपस्या में भी मर्यादा अपेक्षित है—शरीर को सन्तप्त नहीं कर देना। संभजनीय कर्मों को करते हुए विद्यार्थी सशक्त बनें और शरीर में रोगों का हरण करनेवाले तेज से युक्त हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

आचार्य के गर्भ में

दर्दाम्यस्मा अवसानमेतद्य एष आगन्मम चेदभूदिह।
यमश्चिकित्वान्प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह॥ ३७॥

१. विद्यार्थी आचार्य के समीप आता है। आचार्य उसके माता-पिता से कहते हैं कि **अस्मै!** इसके लिए **एतत्**=इस **अवसानम्**=(अवस्यन्ति निवसन्ति अस्मिन्—निवासस्थानम्) निवासस्थान को **ददामि**=देता हूँ। **चेत्**=यदि **इह**=यहाँ **यः एषः आगन्**=यह जो आया है, वह **मम अभूत्**=मेरा ही हो गया है। अब विद्यार्थी ने आचार्य के समीप रहना है—उसी का हो जाना है। २. **चिकित्वान् यमः**=यह ज्ञानी नियन्ता आचार्य **प्रति एतत् आह**=प्रत्येक माता-पिता से यह कहते हैं कि **एषः**=यह बालक **मम राये**=मेरे ज्ञानधन के लिए **इह उपतिष्ठताम्**=यहाँ उपस्थित हो—यहाँ रहता हुआ यह मेरे ज्ञानधन को ग्रहण करनेवाला बने।

भावार्थ—विद्याथी आचार्य के समीप रहकर आचार्य से ज्ञानधन प्राप्त करे। आचार्य विद्यार्थी को अपने समीप निवासस्थान प्राप्त कराये। विद्यार्थी आचार्य का ही हो जाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**३८, ३९, ४१ आर्षीगायत्री, ४०, ४२-४४ भुरिगार्षीगायत्री**॥

'मात्रा बलम्' (उपनिषत्)

इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा॥ ३८॥
प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा॥ ३९॥
अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा॥ ४०॥
वी३मां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा॥ ४१॥
निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा॥ ४२॥
उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा॥ ४३॥
समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै। शते शरत्सु नो पुरा॥ ४४॥

१. सब बातों को मर्यादा में करना आवश्यक है। ३६वें मन्त्र के अनुसार तप की भी एक मर्यादा है। **इमाम्**=इस **मात्राम्**=मात्रा को **मिमीमहे**=हम मापनेवाले बनते हैं, अर्थात् सब कार्यों

को माप-तोलकर, युक्तरूप में करते हैं। युक्तचेष्ट पुरुष के लिए ही तो योग दु:खहा होता है। उपनिषद् का 'मात्रा बलम्' यह वाक्य इसी बात पर बल देता हुआ कह रहा है कि यह मात्रा ही तुम्हारे बल को स्थिर रक्खेगी। मात्रा को हम नापते हैं, **यथा**=जिससे **अपरं न मासातै**=कोई और वस्तु हमें न माप ले, अर्थात् हमारे जीवन को समाप्त न कर दे। **नः**=हमें **शते शरत्सु पुरा**=जीवन के सौ वर्षों से पहले कोई वस्तु न नाप ले, अर्थात् असमय में हमारी मृत्यु न हो जाए। २. इसी उद्देश्य से **(प्र इमां०)** हम मात्रा को प्रकर्षेण मापनेवाले बनते हैं। (हर्षे चाप: प्रयुज्यते) **अप इमाम्**=आनन्दपूर्वक हम मात्रा को मापते हैं—माप तोलकर कार्यों को करने में आनन्द लेते हैं। **वि इमाम्**=विशेषरूप से इस मात्रा को मापते हैं। **निर् इमाम्**=निश्चय से इस मात्रा को मापते हैं। **उत् इमाम्**=उत्कर्षेण इस मात्रा को मापते हैं। **सम् इमाम्**=सम्यक् इस मात्रा को मापते हैं। मात्रा में सब कार्यों को करना ही तो दीर्घ व उत्कृष्ट जीवन का साधन है।

भावार्थ—हम मात्रा को मापनेवाले बनेंगे, अर्थात् सब कार्यों को माप-तोलकर करेंगे—विशेषकर खान-पान को। ऐसा करने पर सौ वर्ष से पूर्व हमें यम माप न सकेगा, अर्थात् हम दीर्घजीवनवाले बनेंगे।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

स्वः आगाम, आयुष्मान् भूयासम्

अमासि मात्रां स्व१रगामायुष्मान्भूयासम्।
यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा॥ ४५॥

१. **मात्रां अमासि**=मैंने मात्रा को मापा है, अर्थात् प्रत्येक कार्य को माप-तोलकर किया है। मैं युक्ताहार-विहार बना हूँ—युक्तस्वप्नावबोध हुआ हूँ (सोना व जागना भी मात्रा में ही किया है) सब कर्मों में युक्तचेष्ट रहा हूँ। इसी से **स्वः अगाम**=सुख व आत्मप्रकाश को मैंने प्राप्त किया है। **आयुष्मान् भूयासम्**=मैं प्रशस्त दीर्घजीवनवाला बनूँ। २. मात्रा को मैंने इसीलिए मापा है कि **यथा अपरं न मासातै**=कोई और वस्तु हमें न माप ले। **नः**=हमें **शते शरत्सु पुरा**=सौ वर्षों के पूर्ण होने से पहले यम मापनेवाला न बने। हम अवश्य सौ वर्ष के दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

भावार्थ—सब कार्यों को—खान-पान आदि को मात्रा में करने पर दीर्घ सुखी-जीवन की प्राप्ति होती है।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अपरिपर पथ (अकुटिल मार्ग)

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन्गच्छ॥ ४६॥

१. हम इस बात को कभी न भूलें कि **प्राणः**=प्राण, **अपानः**=अपान, **व्यानः**=व्यान, **आयुः**=जीवन तथा **चक्षुः**=आँख—ये सब **सूर्याय दृशये**=उस सूर्यस्थ ज्योति ब्रह्म के दर्शन के लिए दिये गये हैं। वस्तुतः जीवन का लक्ष्य ब्रह्मप्राप्ति ही है, २. अतः हे साधक! तू **यमराज्ञः**=उस सर्वनियन्ता शासक (देदीप्यमान) प्रभु के—प्रभु से उपदिष्ट **अपरिपरेण पथा**=अकुटिल मार्ग से **पितॄन् गच्छ**=पितरों को प्राप्त होनेवाला हो। अकुटिल मार्ग से चलता हुआ तू भी पितरों में गिना जानेवाला हो। 'आर्जवं ब्रह्मणः पदम्' सरलता ही प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है।

भावार्थ—हम जीवन का लक्ष्य प्रभु-प्राप्ति को समझें। सरलमार्ग से चलते हुए पितरों में गिने-जाते हुए, प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'सुखमय दीप्त' जीवन

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः॥ ४७॥

१. **ये**=जो **अग्रवः**=अग्रगतिवाले, अग्रु (ummarried) गृहस्थ में अनासक्त (अविवाहित), **शशमानाः (शंसमानाः)**=प्रभु-स्तवन करते हुए अथवा (शश प्लुतगतौ) प्लुतगति से कर्त्तव्यकर्मों को करते हुए **द्वेषांसि हित्वा**=सब प्रकार के द्वेषभावों को छोड़कर **अनपत्यवन्तः**=सन्तानों के चक्कर में न पड़े हुए, अथवा ऐश्वर्यशाली (पत्यते एश्वर्यकर्मणः)—ज्ञान के ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष **परेयुः**=(परा ईयुः) सब दुरितों से दूर गतिवाले होते हैं। **ते**=वे **द्याम् उत् इत्य**=पृथिवीलोक से अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष से ऊपर उठकर द्युलोक में **लोकम् अविदन्त**=प्रभु के प्रकाश को प्राप्त करते हैं—ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं 'दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्'। २. ये व्यक्ति **नाकस्य पृष्ठे**=स्वर्गलोक के पृष्ठ पर **अधिदीध्यानाः**=आधिक्येन दीप्त होते हैं। ये सुखमय व दीप्तजीवनवाले होते हैं। वस्तुतः प्रभु की दीप्ति से इनका जीवन दीप्त बनता है।

भावार्थ—हम अग्रगतिवाले, प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले, द्वेषशून्य, ज्ञानैश्वर्यपूर्ण बनकर प्रभु के प्रकाश को देखनेवाले बनें तभी हमारा जीवन सुखमय व दीप्त होगा।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उदन्वती, पीलुमती, प्रद्यौः

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥ ४८॥

१. प्रकृति का विज्ञान हमें विविध भोगों को प्राप्त कराता है। यहाँ मन्त्र में 'उदक' शब्द भोगों का प्रतीक है। यह **उदन्वती द्यौः**=सब भोगों को प्राप्त करानेवाला प्रकृतिविज्ञान **अवमा**=सबसे निचला है। (पालयति इति पीलुः), **पीलुमती इति**=पालक तत्त्वोंवाला जो जीव-विज्ञान है, वह **मध्यमा**=मध्यम ज्ञान है। २. इस प्रकृति व जीव के ज्ञान से **ह**=निश्चयपूर्वक **तृतीया**=तृतीय आत्मविज्ञान है। यह परमात्मज्ञान ही **प्रद्यौः इति**=प्रकृष्ट ज्ञान के रूपों में कहा जाता है। **यस्याः**=जिस 'प्रद्यौः' में—प्रकृष्ट ज्ञान में **पितरः आसते**=पितर आसीन होते हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करके ही तो वे पितर बनते हैं। प्रभु का जाननेवाला किसी की हिंसा न करता हुआ रक्षणात्मक कार्यों में ही प्रवृत्त होता है।

भावार्थ—प्रकृतिविज्ञान से हम आवश्यक भोगों को प्राप्त करें। जीवविज्ञान के द्वारा अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए अपना पालन कर पाएँ। प्रकृष्ट आत्मविज्ञान हमें रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त करनेवाला हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

'अन्तरिक्ष, पृथिवी व द्युलोक' में स्थित पितर

ये नः पितु पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम॥ ४९॥

१. **ये**=जो **नः**=हमारे **पितुः पितरः**=पिता के भी पिता हैं—पिताजी के भी पिता के समान हैं, **ये**=जो **पितामहा**=हमारे दादा हैं, **ये**=जो **उरु अन्तरिक्षम् आविविशुः**=गृहस्थ के संकुचित क्षेत्र से निकलकर विशाल अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुए हैं—जिन्होंने अब सारी वसुधा को ही अपना कुटुम्ब बनाया है, **ये**=जो **पृथिवीम् आक्षियन्ति**=पृथिवी में निवास करते हैं—इस प्रकृतिरूप पृथिवी में निवास करते हुए गतिशील होते हैं (क्षि निवासगत्यौ), **उत**=और **द्याम्**=जो द्युलोक में—ज्ञान के प्रकाश में निवास करते हैं, **तेभ्यः पितृभ्यः**=उन पितरों के लिए **नमसा विधेम**=नमन से (आदर से) तथा अन्न से पूजन करते हैं। उन्हें आदरपूर्वक अन्न देनेवाले बनते हैं।

भावार्थ—पितर वे हैं जो गृहस्थ के छोटे क्षेत्र से विशाल अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुए हैं—वानप्रस्थ बनकर सभी को अपना मानने लगे हैं। जो इस शरीर में निवास करते हुए गतिशील हैं और उत्कृष्ट आत्मतत्त्व को प्राप्त करते हैं। इन पितरों का हम आदरपूर्वक आतिथ्य करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

जैसे माता पुत्र को

इदमिद्वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम्।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये᳘नं भूम ऊर्णुहि॥ ५०॥

१. गतमन्त्र के अनुसार उत्कृष्ट आत्मज्ञान को प्राप्त करनेवाले पितर प्रभु के प्रकाश को देखते हुए कहते हैं कि **इदम् इत् वा उ**=निश्चय से यह ब्रह्म ही सत्य है। **न अपरम्**=इसके समान और कुछ नहीं (अन्यत् सर्वमार्तम्) **दिवि सूर्यं पश्यसि**=ये प्रभु तो ऐसे हैं जैसे द्युलोक में सूर्य (आदित्यवर्णं, तमसः परस्तात्)। वहाँ अन्धकार का चिह्न भी नहीं है। २. **भूमे**=सब प्राणियों के निवास स्थानभूत प्रभो! (भवन्ति भूतानि अस्याम्) **यथा**=जैसे **माता**=माता **पुत्रम्**=पुत्र को **सिचा**=वस्त्र प्रान्त से आच्छादित कर लेती है, इसीप्रकार **आप एनम्**=अपने इस रूप को **अभि ऊर्णुहि**=आच्छादित करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु अद्वितीय हैं, द्युलोकस्थ सूर्य के समान दीप्त हैं 'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः'। प्रभु अपने भक्त को इसप्रकार अपनी गोद में सुरक्षित कर लेते हैं, जैसे माता वस्त्रप्रान्त से पुत्र को।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

जैसे पत्नी पति को

इदमिद्वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम्।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये᳘नं भूम ऊर्णुहि॥ ५१॥

१. **इदम् इत् वा उ**=यह हृदयों में द्योतित होनेवाला प्रभु ही निश्चय से है, **न अपरम्**=इसके समान और कोई नहीं 'अन्यत् सर्वमार्तम्'। **जरसि**=उस प्रभु का स्तवन होने पर **अन्यत्**=और सब-कुछ **इतः अपरम्**=इससे अपर है—नीचे है। प्रभु ही सर्वमहान् हैं। 'महतो महीयान्'। २. भक्त प्रार्थना करता है कि हे **भूमे**=सबके निवासस्थानभूत प्रभो! **इव जाया**=जैसे एक पत्नी **वासा**=वस्त्र से **पतिम्**=पति को आच्छादित कर लेती है, इसीप्रकार **आप एनम्**=इस भक्त को **अभि ऊर्णुहि**=सर्वतः आच्छादित करनेवाले होवें।

भावार्थ—प्रभु सर्वमहान् हैं। वही स्तुति के योग्य हैं। प्रभु अपने भक्त को इसप्रकार सुरक्षित कर लेते हैं जैसे पत्नी पति को।

सूचना—इस दृष्टान्त में भक्त कवियों के रहस्यवाद की गन्ध स्पष्ट है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पृथिवी माता के वस्त्र से अपना आच्छादन

अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि॥ ५२॥

१. प्रभु कहते हैं कि हे साधक! मैं **त्वा**=तुझे **पृथिव्याः मातुः**=इस पृथिवी माता के **वस्त्रेण**=वस्त्र से—आच्छादन शक्ति से **भद्रया**=कल्याण और सुख के हेतु से **अभि ऊर्णोमि**=आच्छादित करता हूँ। यह पृथिवी तुझे माता के समान अपनी गोद में कल्याण के हेतु से धारण करे। इससे तुझे भोजन व वस्त्र ठीक रूप में प्राप्त होते रहें। तू पृथिवी से ही भोजन व वस्त्रों को प्राप्त कर। मांस भोजनों से दूर रहना ही ठीक है। २. साधक प्रार्थना करता है कि **जीवेषु**=जीवों में **भद्रम्**=जो भद्र है—शुभ है **तत् मयि**=वह मुझमें हो, अर्थात् मैं सब शुभ बातों से युक्त होऊँ। ३. इस प्रार्थना को सुनकर प्रभु उत्तर देते हैं कि जो **पितृषु स्वधा**=पितरों के विषय में स्वधा है—अन्नादि का देना है, **सा त्वयि**=वह तुझमें हो, अर्थात् तू पितरों को आदरपूर्वक अन्नादि प्राप्त करानेवाला हो। यह बड़ों का आदर तुझे सदा सुपथ पर ले-चलनेवाला बनेगा।

भावार्थ—हम माता पृथिवी से भोजन व वस्त्रों को प्राप्त करें। अपने बड़ों को आदरपूर्वक अन्न प्राप्त कराएँ, इससे हमारे जीवन में सब शुभों का समावेश होगा।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्नि और सोम के समन्वय से 'स्योन, रत्न व लोक' की प्राप्ति

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम्।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम्॥ ५३॥

१. **अग्नीषोमा**='अग्नि और सोम' क्रमशः 'ज्योति व आपः' के वाचक हैं। 'अग्नि' तेजस्विता व उग्रता है तो 'सोम' शान्ति है। इन दोनों—अग्नि और सोम का समन्वय ही जीवन में अभिप्रेत है। जो **पथिकृता**=मार्ग को बनानेवाले हैं—इन दोनों का समन्वय ही जीवन में ठीक मार्ग है। ये अग्नि और सोम **देवेभ्यः**=देववृत्ति के पुरुषों के लिए **स्योनम्**=सुख को, **रत्नम्**=रत्न को—रमणीय धन को तथा **लोकम्**=प्रकाश को **विदधथुः**=धारण करते हैं। २. **यः**=जो मार्ग **अञ्जोयानैः पथिभिः**=सरल (ऋजुतायुक्त) गतियोंवाले मार्गों से **प्र ईष्यन्तम्**=(ईष दर्शनं) प्रकर्षेण सबको देखते हुए **पूषणम्**=सर्वपोषक प्रभु को **उपवहाति**=समीप प्राप्त कराता है, हे अग्नीषोमा! आप **तत्र गच्छतम्**=वहाँ ही चलो। उस मार्ग की ओर ही चलो।

भावार्थ—यदि हम अपने जीवन में अग्नि और सोम का समन्वय करेंगे तो देववृत्ति के बनकर सुख, रमणीय धन व प्रकाश को प्राप्त करेंगे। ये अग्नि और सोम हमें उस मार्ग पर ले-चलेंगे जो हमें प्रभु के समीप प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

इतः प्रच्यावयतु

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः॥ ५४॥

१. **पूषा**=वह पोषक प्रभु **त्वा**=तुझे **इतः प्रच्यवतु**=इस भौतिक संग से पृथक् करे। वह प्रभु जो **विद्वान्**=ज्ञानी है, **अनष्टपशुः**=अपने प्राणियों को नष्ट नहीं होने देता। साधकों का कल्याण

करनेवाला है। **भुवनस्य गोपा:**=सम्पूर्ण भुवन का रक्षक है। २. **स:**=वह **अग्नि:**=अग्रणी प्रभु ही **त्वा**=तुझे **एतेभ्य:**=इन **सुविदत्रियेभ्य:**=उत्तम ज्ञान के द्वारा रक्षा करनेवाले, **देवेभ्य:**=देववृत्तिवाले **पितृभ्य:**=पितरों के लिए **परिददत्**=प्राप्त कराता है। इनके रक्षण से तू भी उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता हुआ देववृत्ति का बनता है।

भावार्थ—वह पोषक प्रभु हमें भौतिक संग में डूबने से बचाता है। इसी उद्देश्य से प्रभु हमें ज्ञानी, देववृत्तिवाले पितरों को प्राप्त कराते हैं। इनके रक्षण में हम भी देव बन पाते हैं।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**यम:, मन्त्रोक्ता:**॥ छन्द:—**त्रिष्टुप्**॥

आयु: विश्वायु:

आयुर्विश्वायु: परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देव: सविता दधातु॥ ५५॥

१. **आयु:** (इण् गतौ), सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को गति देनेवाला, **विश्वायु:**=(आयु: अन्नम्—नि० २.७)=सबके लिए अन्नों को प्राप्त करानेवाला **पूषा:**=पोषक प्रभु **त्वा परिपातु**=तेरा सर्वत्ररक्षण करे। यह प्रभु **त्वा**=तुझे **प्रपथे**=उत्कृष्ट मार्ग में **पुरस्तात् पातु**=आगे से रक्षित करे। प्रभु हमें उत्तम अन्नों को प्राप्त कराएँ और प्रशस्त मार्ग पर ले-चलें। सात्त्विक अन्नों से हमारी वृत्ति भी सात्त्विक ही बनेगी। २. **यत्र**=जिस मार्ग पर **सुकृत:**=पुण्यकर्मा लोग **आसते**=आसीन होते हैं, **यत्र**=जिस मार्ग पर **ते ईयु:**=वे गति करते हैं, **तत्र**=उस मार्ग पर **त्वा**=तुझे **सविता देव:**=प्रेरक प्रकाशमय प्रभु **दधातु**=धारण करें।

भावार्थ—प्रभु ही गति देनेवाले हैं, प्रभु ही सब अन्नों को प्राप्त कराते हैं। प्रभु हमें उत्कृष्ट मार्ग पर ले-चलते हैं। उस मार्ग पर ले-चलते हैं, जिस मार्ग से पुण्यकर्मा लोग गति करते हैं।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**यम:, मन्त्रोक्ता:**॥ छन्द:—**अनुष्टुप्**॥

यमस्य सादनं समिती: च

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात्॥ ५६॥

१. प्रभु कहते हैं कि मैं तेरे इस शरीर-रथ में **इमौ युनज्मि**=इन प्राणापान को जोड़ता हूँ। ये **ते**=तुझे **वह्नी**=लक्ष्य-स्थान पर ले-जानेवाले हों। **असुनीताय** (असु=प्रज्ञा। नि० १०.३४) ये प्राणापान तुझे प्रज्ञापूर्वक मार्ग पर ले-चलनेवाले हों। **वोढवे**=तेरे सब कार्यों का वहन करनेवाले हों। २. **ताभ्याम्**=उन प्राणापान के द्वारा **यमस्य सादनम्**=उस सर्वनियन्ता प्रभु के गृह को **अवगच्छतात्**=तू प्राप्त होनेवाला हो **च**=और इसी उद्देश्य से **समिती: (सम् इती:)**=उत्तम गतियों को तथा मिलकर होनेवाली गतियों को तू प्राप्त होनेवाला हो। तेरे कार्य विरोधात्मक न हों। 'येन देव: न वियन्ति'=देव विरुद्ध-गतियोंवाले नहीं होते।

भावार्थ—प्रभु ने हमें प्राणापान प्राप्त कराये हैं। इनकी साधना के द्वारा हम लक्ष्यस्थान पर पहुँचेंगे। प्राणसाधना हमें प्रज्ञासम्पन्न करके कर्त्तव्य-वहन में समर्थ करेगी। अन्तत: इन्हीं से हम ब्रह्मलोक को प्राप्त करेंगे और उत्तम गतियोंवाले होंगे।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**यम:, मन्त्रोक्ता:**॥ छन्द:—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

इष्टापूर्त द्वारा पापमोचन

एतत्त्वा वास: प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभ: पुरा।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान्यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु॥ ५७॥

१. हे जीव! **एतत्**=यह **प्रथमं वासः**=सर्वोत्कृष्ट मानव शरीररूप वस्त्र **त्वा आगन्**=तुझे प्राप्त हुआ है। **नु**=अब **एतत्**=इसको **अप ऊह**=दूर करनेवाला बन। **यत्**=जिसे **इह**=यहाँ—संसार में **पुरा अबिभः**=तूने पहले भी धारण किया है। कितनी ही बार यह शरीर तुझे प्राप्त हुआ है। यह प्राप्त तो इसलिए होता है कि हम इसप्रकार की साधना करें कि यह शरीर फिर न लेना पड़े। साधना के अभाव में बारम्बार हम यहाँ आते हैं। २. इस बार तो **विद्वान्**=ज्ञानी बनता हुआ तू **इष्टापूर्तं अनुसंक्राम**=इष्ट व आपूर्तरूप कर्मों में गतिवाला हो। तू यज्ञशील हो और लोकहित के लिए किये जानेवाले 'वापी, कूप, तड़ाग' आदि के निर्माणरूप कार्यों को कर। **यत्र**=जिन कार्यों में **ते**=तेरे द्वारा **विबन्धुषु**=बन्धुरहित अनाथ व्यक्तियों की सहायता के लिए **बहुधा दत्तम्**=बहुत प्रकार से दिया जाता है, अर्थात् तू केवल अपना ही पेट भरना नहीं जानता, अपितु यज्ञशेष का ही सेवन करता है। 'यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः' यज्ञशिष्ट का सेवन करते हुए तू सब पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

भावार्थ—मानवजीवन को प्राप्त करके हम इसप्रकार साधना करें कि हमें फिर यह शरीर न लेना पड़े। साधना यही है कि हम जीवन को यज्ञमय बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभुरूप कवच के अभाव में 'काम' का आक्रमण

अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॒र्व्ययस्व॒ सं प्रोर्णु॑ष्व॒ मेद॑सा॒ पीव॑सा च।
नेत्त्वा॑ धृ॒ष्णुर्हर॑सा॒ जर्हृ॑षाणो द॒धृग्वि॑ध॒क्षन्प॑री॒ङ्खया॑तै॥ ५८॥

१. हे साधक! तू **गोभिः**=वेदवाणियों के द्वारा **अग्नेः वर्म परिव्ययस्व**=उस प्रभुरूप कवच को धारण करनेवाला बन। प्रभु तेरे कवच हों। इसके लिए वेदवाणियों का अध्ययन तेरा साधन हो, **च**=और तू अपने शरीर को भी **पीवसा मेदसा**=मज्जा तथा मेदस् तत्त्व—स्थौल्य व चर्बी से भी **संप्रोर्णुष्व**=सम्यक् आच्छादित कर। तेरा शरीर दुबला-पतला-सा न हो। ऐसा व्यक्ति चिड़चिड़े स्वभाव का बन जाता है। शरीर भरा हुआ हो और मनुष्य प्रभु-स्मरण में चलता हो, तब वह वासनाओं से आक्रान्त नहीं होता। २. तू प्रभु को कवच बना तथा शरीर भी तेरा भरा हुआ हो, जिससे **त्वा**=तुझे यह 'काम' रूप शत्रु **न इत् परीङ्खयातै**=चारों ओर से घेर न ले—तुझे यह अपने वशीभूत न कर ले। यह काम **धृषणुः**=धर्षण करनेवाला है—हमें कुचल डालनेवाला है। **हरसा जर्हृषाणः**=विषयों में हरण के द्वारा रोमाञ्चित करनेवाला है। **दधृक्**=पकड़ लेनेवाला है—इससे पीछा छुड़ाना बड़ा कठिन है। **विधक्षन्**=यह हमें भस्म कर डालनेवाला है।

भावार्थ—'काम' के आक्रमण से हम तभी बच सकते हैं यदि प्रभु-स्मरणरूप कवच हमने धारण किया हुआ हो और हमारा शरीर अस्थि-पंजर-सा न होकर भरा व सुदृढ़ हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सुवीर, न कि गतासु (मृतप्राय-सा)

द॒ण्डं हस्ता॑दा॒दद॑ानो ग॒तासोः॑ स॒ह श्रोत्रे॑ण॒ वर्च॑सा॒ बले॑न।
अत्रै॒व त्वमि॒ह व॒यं सु॒वीरा॒ विश्वा॒ मृधो॑ अ॒भिमा॑तीर्जयेम॥ ५९॥

१. जो व्यक्ति उत्साहशून्य जीवनवाला मृतप्राय-सा होता है उस **गतासोः**=गतप्राण (मृतप्राय) व्यक्ति के **हस्तात्**=हाथ से **दण्डम्**=दमनशक्ति को **आददानः**=छीन लेते हुए, हे प्रभो! **त्वम्**=आप **श्रोत्रेण**=ज्ञान-प्राप्ति की साधनभूत श्रवणशक्ति के साथ **वर्चसा बलेन सह**=रोगों से मुक़ाबला करनेवाली 'वर्चस्' शक्ति के साथ तथा शत्रुओं से मुक़ाबला करनेवाले बल के साथ **अत्र**

एव=यहाँ ही हमारे जीवन में होओ। २. **इह**=यहाँ इस जीवन में **वयम्**=हम **सुवीराः**=उत्तम वीर बनते हुए **विश्वाः**=सब **मृधः**=हिंसन करनेवाली **अभिमातीः**=शत्रुभूत अभिमान आदि भावनाओं को **जयेम**=जीतनेवाले हों। सब शत्रुओं को जीतकर हम इस जीवन में सुखी हों और आपको प्राप्त करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु निरुत्साही (गतप्राण-से) व्यक्ति के हाथ से दमनशक्ति को छीन लेते हैं। वे प्रभु 'श्रोत्र, वर्चस् व बल' के साथ हमारे जीवन में हों। हम वीर बनकर विनाशक अभिमान आदि वृत्तियों को पराभूत करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

क्षत्रेण वर्चसा बलेन

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम्॥ ६०॥

१. **मृतस्य**=मृत=मरे हुए-से—निराशावादी पुरुष के **हस्तात्**=हाथ से **धनुः आददाना**=शत्रु-संहारक धनुष् को छीनता हुआ **त्वम्**=तू **क्षत्रेण वर्चसा बलेन सह**=क्षतों से त्राण की शक्ति, रोगनिवारकशक्ति तथा शत्रुओं से मुक़ाबला करनेवाली शक्ति के साथ **भूरि वसु समागृभाय**=पालन-पोषण करनेवाले धन को ग्रहण कर। २. इसप्रकार तू **अर्वाङ्**=हम सबके सामने **पुष्टं जीवलोकम् एहि**=पोषणशक्तियुक्त इस जीवलोक को प्राप्त हो।

भावार्थ—हम मृतप्राय न बनकर जीवित होते हुए हाथ में शत्रु-विद्रावक धनुष् को लें। 'क्षत्र, वर्चस् व बल' के साथ खूब ही धन को प्राप्त हों। पुष्ट जीवलोक को प्राप्त करनेवाले हों।

अथ चतुस्त्रिंशः प्रपाठकः

अथ तृतीयोऽनुवाकः

[३] तृतीयं सूक्तम्

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पत्नी का उत्तराधिकार

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि॥ १॥

१. **इयं नारी**=यह गृह को उन्नति-पथ पर ले-चलनेवाली स्त्री **पतिलोकं वृणाना**=पतिलोक का वरण करती हुई हे **मर्त्य**=मनुष्य! **त्वा उपनिपद्यते**=तेरे समीप प्राप्त होती है। **प्रेतम्**=इस संसार से चले गये हुए भी तुझको समीपता से प्राप्त होती है, अर्थात् अपने पिता के घर में, या फिर से विवाहित होकर किसी अन्य घर में नहीं चली जाती है। २. यह नारी **पुराणम्**=(पुरा अपि नवम्) सनातन **धर्मं अनुपालयन्ती**=धर्म का पालन करती हुई तुझसे दूर नहीं होती। तेरे कुल को ही अपना कुल समझती है। **तस्मै**=उस नारी के लिए **प्रजां द्रविणं च**=सन्तान व धन को **इह**=यहाँ **धेहि**=धारण कर, अर्थात् यदि पत्नी पिता के घर में लौट नहीं जाती तो सन्तानों व धनों की उत्तराधिकारिणी वही है।

भावार्थ—पति की अकस्मात् मृत्यु हो जाने पर पत्नी ही धन व सन्तान की उत्तराधिकारिणी है, यदि धर्म का पालन करती हुई वह पतिलोक का ही वरण करती है, पिता के घर नहीं लौट जाती और न ही अन्य विवाह करती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वस्थ रहते हुए सन्तान का ध्यान करना

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ २॥

१. हे **नारि**=गृह की उन्नति की कारणभूत पत्नि! तू **उदीर्ष्व**=ऊपर उठ और घर के कार्यों में लग (ईर गतौ) **जीवलोकम् अभि**=इस जीवित संसार का तू ध्यान कर। जो गये वे तो गये ही। अब तू **गतासुम्**=गतप्राण **एतम्**=इस पति के **उपशेषे**=समीप पड़ी है। इसप्रकार शोक में पड़े रहने का क्या लाभ? **एहि**=आ, घर की ओर चल। घर की सब क्रियाओं को ठीक से करनेवाली हो। २. **हस्तग्राभस्य**=तेरे हाथ का ग्रहण करनेवाले **दधिषोः**=गर्भ में सन्तान को स्थापित करनेवाले **तव पत्युः**=तेरे पति की **इदं जनित्वम्**=इस उत्पादित सन्तान को **अभि**=लक्ष्य करके **सं बभूथ**=सम्यक्तया होनेवाली हो, अर्थात् तू अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यानकर, जिससे सन्तान के पालन-पोषण में किसी प्रकार से तू असमर्थ न हो जाए।

भावार्थ—यदि अकस्मात् पति मृत्यु का शिकार हो जाए तो पत्नी शोक न करती रहकर, पति के सन्तानों का ध्यान करती हुई अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए यत्नशील हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

नीयमानां, परिणीयमानाम्

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्।
अन्धेन यत्तमसा प्रावृतासीत्प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम्॥ ३॥

१. मैंने **जीवां युवतिम्**=जीवनशक्ति से परिपूर्ण इस युवति को **नीयमानाम् अपश्यम्**=पितृगृह से पतिगृह की ओर ले-जाती हुई को देखा है। एकदिन इस युवति का विवाह हुआ था। आज उसी युवति को **मृतेभ्यः**=मरे हुओं से **परिणीयमानाम्**=परे ले-जायी जाती हुई को देखता हूँ। इसके पति प्राण छोड़कर चले गये हैं। यह शोकाकुल है—बन्धु-बान्धव इसे मृत पति के शरीर से दूर ले-जाने में लगे हैं। २. **यत्**=क्योंकि यह **अन्धेन तमसा प्रावृत आसीत्**=पति की मृत्यु से घने शोकान्धकार से आवृत थी, **तत्**=अतः **एनाम्**=इसको **प्राक्तः**=इस पति के शव के सामने से **अपाचीम् अनयम्**=(पराङ्मुखीम्) दूर—परे प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ—संसार क्या विचित्र है! एकदिन युवति विवाहित होती है। कुछ देर बाद वह मृत शरीरों से दूर ले-जायी जा रही होती है। पत्नी के लिए पति की मृत्यु पर शोकान्धकार में डूब जाना स्वाभाविक है। उसे पति के शव के सामने से दूर—परे ले-जाना ही ठीक है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**सतःपङ्क्तिः** ॥

घर को स्वर्ग बनाना

प्रजानत्य ँघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम्॥ ४॥

१. हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये नारि! तू **जीवलोकं प्रजानती**=जीवति प्राणियों को जाननेवाली हो—उनका ध्यान करनेवाली हो। **देवानां पन्थाम् अनुसंचरन्ती**=देवों के मार्ग पर चलती हुई हो—दिव्य गुणोंवाली बनने का प्रयत्न कर। २. **अयम्**=यह **ते**=तेरा पति **गोपतिः**=इन्द्रियों का स्वामी है—जितेन्द्रिय है, **तं जुषस्व**=इस जितेन्द्रिय पति को प्रीतिपूर्वक सेवति करनेवाली हो।

एनम्=इसको **स्वर्गं लोकम् अधिरोहय**=स्वर्गलोक में आरूढ़ करनेवाली हो। इस जितेन्द्रिय पुरुष का यह घर स्वर्ग बने। स्वर्ग बनाने का उत्तरदायित्व पत्नी पर ही तो है।

भावार्थ—पत्नी गौ के समान अहन्तव्य है। यह सन्तानों का ध्यान करती है—दिव्यगुणों को धारण करती है। अपने जितेन्द्रिय पति का प्रीतिपूर्वक धारण—सेवन करती हुई यह घर को स्वर्ग बनाती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिपदानिचृद्गायत्री**॥

उप द्याम्, उप वेतसम्

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम्। अग्ने पित्तमपामसि॥ ५॥

१. गृहपति को यहाँ 'अग्नि' कहा गया है। उसने घर को आगे ले-चलना है—उन्नत करना है। इसका जीवन उत्तम होगा तो यह घर को भी उन्नत कर पाएगा, अतः इस अग्नि के लिए कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील गृहपते! तू **द्याम् उप असि**=ज्ञान के प्रकाश के समीप रहनेवाला है। स्वाध्याय के द्वारा सदा ज्ञान को बढ़ानेवाला है। **वेतसम् उप** (अजेर्वीभावः भज गतिक्षेपणयोः) गति के द्वारा वासनाओं को परे फेंकने की क्रिया के समीप है, अर्थात् सदा क्रियाशील रहता हुआ वासनाओं को अपने से दूर रखता है। २. तू **नदीनाम् अवत्तरः**=स्तोताओं में सर्वाधिक प्रीणन करनेवाला है (अव प्रीणने)। स्तुति द्वारा प्रभु को प्रीणित करनेवाला है। हे अग्ने! तू **अपाम्**=शरीरस्थ रेतःकणों का **पित्तम्**=तेज **असि**=है। रेतःकणों के रक्षण से तेरे शरीर में उचित उष्मता की सत्ता है। वस्तुतः इन रेतःकणों की शक्ति से ही तो तेरे जीवन में ज्ञान (द्याम्) कर्म (वेतसम्) तथा स्तुति (नदीनाम्) का सुन्दर समन्वय है।

भावार्थ—हम उत्तम गृहपति बनने के लिए स्वाध्याय द्वारा ज्ञान की वृद्धि करनेवाले, क्रियाशीलता द्वारा वासनाओं को दूर रखनेवाले तथा स्तुति द्वारा प्रभु का प्रीणन करनेवाले बनें। इन सब बातों के लिए शरीर में रेतःकणों के रक्षण से उचित उष्मता व तेजस्वितावाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, अग्निः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सोम्य भोजन, न कि आग्नेय

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्य ∫ ल्कशा॥ ६॥

१. गतमन्त्र के अन्तिम वाक्य में शरीर में रेतःकणों के रक्षण का उल्लेख है। वस्तुतः 'आग्नेय भोजन' सोमरक्षण के लिए अनुकूल नहीं है, अतः कहते हैं कि हे **अग्ने**=अग्नितत्त्व-प्रधान आग्नेय भोजन! **त्वम्**=तूने **यम्**=जिसको **सम् अदहः**=जला-सा दिया है, जिसमें उत्तेजना पैदा कर दी है—अब **तम्**=उसको **उ**=निश्चय से **पुनः निर्वापय**=फिर शान्त करनेवाला हो—उसकी उत्तेजना को बुझानेवाला हो। २. इस उत्तेजना की शान्ति के लिए **अत्र**=यहाँ—हमारे लिए **क्याम्बूः**=(कियत् प्रमाणमुदकं-अम्बु-अस्मिन्) अत्यधिक जल के परिमाणवाले ये व्रीहि (चावल) आदि पदार्थ **रोहतु**=उगें तथा **व्यल्कशा**=विविध शाखाओं से युक्त **शाण्डदूर्वा**=(शडि रोगे, ऊर्व हिंसायाम्) रोगों का हिंसन करनेवाली वनस्पति उगे। इन व्रीहि व अन्य वनस्पति भोजनों से हम उत्तेजना से बचकर सोम का रक्षण करनेवाले हों।

भावार्थ—हम आग्नेय भोजनों से बचें और सदा सौम्य भोजनों को करते हुए नीरोग व शान्त बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

तीन ज्योतियाँ

इदं त एकं पर ऊं त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे॥ ७॥

१. हे साधक—गतमन्त्र के अनुसार सौम्य भोजनों को ग्रहण करके सोम का रक्षण करनेवाले पुरुष! **इदं ते एकम्**=यह 'प्रकृतिविज्ञान' तेरी एक ज्योति है **उ**=और **एकम्**=एक **ते**=तेरी **परः**= इस प्रकृतिविज्ञान से उत्कृष्ट 'आत्मविज्ञान' की ज्योति है, परन्तु यहाँ भी न रुककर तू **तृतीयेन ज्योतिषा**=तृतीय 'परमात्मविज्ञान' रूप ज्योति के साथ **संविशस्व**=(संविश to enter, to enjoy, to engage oneself in) यहाँ शरीर में रह, आनन्द ले और अपने को व्यापृत रख। २. **संवेशने**=इन तीन ज्योतियों के साथ आनन्दमय जीवनवाला होकर **तन्वा**=इस शरीर से—अथवा शक्तियों के विस्तार के साथ **चारुः**=सुन्दर जीवनवाला व ज्ञान का चरण (भक्ष्ण) करनेवाला तू **एधि**=हो। तू **देवानाम्**=देवों का **प्रियः**=प्रिय बन। दिव्य गुण ही तुझे रुचिकर हों। **परमे सधस्थे**=सर्वोत्कृष्ट हृदयदेश में, जहाँ आत्मा व परमात्मा की सहस्थिति है, (सध-स्थ) उस हृदय में, तू निवास करनेवाला हो। अन्तर्दृष्टिवाला बन।

भावार्थ—हम 'प्रकृति, जीव व परमात्मा' का ज्ञान प्राप्त करें। अपनी शक्तियों का विस्तार करते हुए सुन्दर जीवनवाले बनें। दिव्यगुण हमें प्रिय हों। अन्तर्दृष्टि बनें—हृदय में प्रभु के समीप बैठनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सं सोमेन, सं स्वधाभिः

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः॥ ८॥

१. हे साधक! **उत्तिष्ठ**=तू उठ—सोता ही न रह। **प्रेहि**=प्रकृष्ट मार्ग पर गतिवाला बन। **प्रद्रव**=कर्त्तव्यपथ पर आगे बढ़ तथा **सलिले सधस्थे**=(सलिलम्—अन्तरिक्ष सा०) आत्मा व परमात्मा के सहस्थानभूत हृदयान्तरिक्ष में **ओकः कृणुष्व**=तू अपना घर बना। लौकिक कार्यों से निपटते ही तू इस घर में आनेवाला बन। संभजन में ही तू रिक्त समय का यापन कर। मार्ग में इधर-उधर न भटक। २. **तत्र**=वहाँ उस उत्कृष्ट जीवनस्थिति में **त्वम्**=तू **पितृभिः**=ज्ञान देनेवाले आचार्यों के साथ **संविदानः**=(विद् लाभे) संगत होता हुआ, **सोमेन**=शरीर में सोमशक्ति से **सं मदस्व**=संगत होकर आनन्दित हो—शरीर में सोम का रक्षण करनेवाला बन तथा **स्वधाभिः सम्**=आत्मधारणशक्तियों के साथ संगत हो। इसप्रकार तेरा जीवन आनन्दमय बने।

भावार्थ—आलस्य को छोड़कर हम गतिशील हों—कर्त्तव्यकर्मों को करनेवाले बनें। रिक्त समय को हृदय में प्रभु के साथ ही बिताएँ, अर्थात् हृदय में प्रभु का ध्यान करें। ज्ञानियों के सम्पर्क में ज्ञानवृद्धि करते हुए सोम का शरीर में रक्षण करें और आत्मधारणशक्तियों के साथ आनन्दमय जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

स्वस्थ शरीर, रुच्यनुकूल कार्य, प्रिय निवासस्थान

प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम्।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ॥ ९॥

१. **प्रच्यवस्व**=(प्रच्यु drive, urge on) तू अपने को आगे प्रेरित कर। सबसे प्रथम **तन्वं संभरस्व**=शरीर का सम्भरण करनेवाला बन। शरीर में उत्पन्न हो गई सब न्यूनताओं को दूर कर। **ते गात्राा मा विहायि**=तेरे अंग तुझे न छोड़ जाएँ—उनमें किसी प्रकार की कमी न आ जाए **मा उ शरीरम्**=और न ही तेरा शरीर छूट जाए—तू स्वस्थ बना रहे। २. अब स्वस्थ बनकर जहाँ तेरा **मनः निविष्टम्**=मन लगे **अनु संविशस्व**=उसके अनुसार कार्यक्षेत्र में प्रवेश कर। आजीविका के लिए 'ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यों' के योग्य जिस भी कार्य में तेरा मन लगे उस कार्य को तू करनेवाला बन। **यत्र भूमेः जुषसे**=जिस भूप्रदेश को तू प्रेम करता है **तत्र गच्छ**=वहाँ जा। जिस भूभाग में तुझे रहना अच्छा लगे, वहाँ तू अपना निवासस्थान बना।

भावार्थ—संसार में आलस्य को छोड़कर हम आगे बढ़ें। शरीर के सब अंगों को स्वस्थ रक्खें। आजीविका के लिए रुचि के अनुसार कार्य का चुनाव करें। जो भूप्रदेश प्रिय हो, वहाँ अपना निवासस्थान बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वर्चसा, मधुना घृतेन

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु॥ १०॥

१. **माम्**=मुझे **सोम्यासः**=सौम्य स्वभाववाले अथवा सोम (वीर्य) का रक्षण करनेवाले **पितरः**=माता-पिता व आचार्य **वर्चसा**=तेजस्विता से **अञ्जन्तु**=अलंकृत करें। **देवाः**=सब देव मुझे **मधुना**=वाणी के माधुर्य से तथा **घृतेन**=ज्ञान की दीप्ति से अलंकृत करें। २. **चक्षुषे**=दीर्घकाल तक सूर्य के दर्शन के लिए **मा**=मुझे **प्रतरम्**=ख़ूब ही **तारयन्तः**=रोग आदि से व्यावृत्त करते हुए **जरसे**=पूर्ण जरावस्था, अर्थात् आयुष्य के लिए **मा**=मुझे **जरदष्टिं वर्धन्तु** (जरती जीर्णा अष्टिः अशनं यस्य—सा०) पचे हुए भोजनवाला करके बढ़ाए, अर्थात् अन्त तक मेरी पाचनशक्ति ठीक बनी रहे और मैं स्वस्थ व दीर्घजीवी बन सकूँ।

भावार्थ—मुझे माता-पिता-आचार्य 'वर्चस्वी' बनाएँ। देव मुझे मधुर व ज्ञानदीप्त करें। सब प्राकृतिक शक्तियाँ—सूर्य, चन्द्र आदि देव मुझे स्वस्थ व दीर्घजीवी करें। इनकी अनुकूलता से मेरी पाचनशक्ति ठीक बनी रहे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**सतःपङ्क्तिः**॥

वर्चः मेधा, रयि

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्य ॒नक्त्वासन्।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु॥ ११॥

१. **अग्निः**=वह अग्रणी प्रभु **माम्**=मुझे **वर्चसा**=वर्चस्—तेजस्विता से **समनक्तु**=संयोजित करे। अग्रगति की भावना मुझे तेजस्वी बनाए। **विष्णुः**=वह सर्वव्यापक प्रभु **मे आसन्**=मेरे मुख में **मेधां नि अनक्तु**=बुद्धिपूर्वक बोली गई उत्तम वाणी को निश्चय से संयोजित करे। व्यापक व उदार हृदयवाला बनता हुआ मैं सबके प्रति मधुर वाणी बोलनेवाला बनूँ। मेरे मुख से उच्चरित शब्दों में मूर्खता का आभास न हो। २. **विश्वेदेवाः**=सब देव **मे**=मेरे लिए **रयिम्**=ऐश्वर्य को **नियच्छन्तु**=निश्चय से देनेवाले हों। सब देवों की—प्राकृतिक शक्तियों की अनुकूलता मेरे अन्नमयादि सब कोशों को उस-उस ऐश्वर्य से परिपूर्ण करे। **स्योनाः**=सुख देनेवाले **आपः**=शरीरस्थ रेतःकण **पवनैः**=अपनी शोधनशक्तियों के द्वारा **मा पुनन्तु**=मुझे पवित्र करनेवाले हों।

शरीर में शक्तिकणों के रक्षण से रोगादि का सम्भव नहीं रहता, मन भी राग-द्वेष का शिकार नहीं होता। ये रेत:कण शरीर को नीरोग व मन को निर्मल बनाते हैं।

भावार्थ—अग्रगति की भावना मुझे वर्चस्वी बनाये, व्यापकता (उदारता) मुझे बुद्धिपूर्वक मधुर शब्द बोलनेवाला करे। सूर्य आदि सब देव मेरे अन्नमयादि कोशों को उस-उस ऐश्वर्य से सम्पन्न करें। शरीर में सुरक्षित रेत:कण मुझे नीरोग व निर्मल बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

मित्रावरुणा, आदित्याः, इन्द्रः, सविता

मित्रावरुणा परि माम॑धातामादित्या मा स्वर॑वो वर्धयन्तु।
वर्चो॑ म इन्द्रो न्य ∫ नक्तु हस्त॑योर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु॥ १२॥

१. **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण—स्नेह व निर्द्वेषता की देवताएँ **माम्**=मुझे **परि अधाताम्**=सब प्रकार से धारण करें। स्नेह व निर्द्वेषता के धारण से शरीर स्वस्थ बनता है, मन पवित्र रहता है और बुद्धि तीव्र होती है। **स्वरवः** (स्वृ शब्दे)=ज्ञान का उपदेश करनेवाले **आदित्याः**=सूर्य के समान ज्ञानदीप्त आचार्य **मा**=मुझे **वर्धयन्तु**=बढ़ाएँ। ज्ञानोपदेश द्वारा वे मेरी वृद्धि का कारण बनें। २. **इन्द्रः**=सर्वशक्तिमान् प्रभु **मे हस्तयोः**=मेरे हाथों में **वर्चः न्यनक्तु**=वर्चस् को—तेजस्विता को निश्चय से जोड़े। **सविता**=वह सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु **मा**=मुझे **जरदष्टिम्** (जरती जीर्णा अष्टिः अशनं यस्य)=जीर्ण—पचे हुए भोजनवाला **कृणोतु**=करे। भोजन के ठीक पाचन से मुझे नीरोगता व दीर्घजीवन प्राप्त हो।

भावार्थ—मैं स्नेह व निर्द्वेषतावाला बनकर अपना सब प्रकार से धारण करूँ। ज्ञानी आचार्यों के उपदेश से वृद्धि को प्राप्त होऊँ। सर्वशक्तिमान् प्रभु मुझे शक्ति दें। प्रेरक प्रभु मुझे उचित प्रेरणा दें और मैं युक्ताहारविहारवाला बनकर दीर्घजीवी बनूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'संगमनं जनानां' (सपर्यत)

यो ममार॑ प्रथमो मर्त्या॑नां यः प्रेयाय॑ प्रथमो लोकमेतम्।
वैवस्वतं संगम॑नं जना॑नां यमं राजा॑नं हविषा॑ सपर्यत॥ १३॥

१. **यः**=जो **मर्त्यानाम्**=मरणधर्मा पुरुषों में **प्रथमः ममार**=सर्वप्रथम मृत्यु को प्राप्त हुआ, **यः**=जो **एतं लोकम्**=इस लोक में **प्रथमः प्रेयाय**=सर्वप्रथम प्राप्त हुआ, उन सब **जनानाम्**=जानेवाले व आनेवाले मनुष्यों के **संगमनम्**=गतिरूप—सबके आश्रयस्थान **वैवस्वतम्**=ज्ञान की किरणों के पुञ्ज **यमम्**=सर्वनियन्ता **राजानम्**=सबके शासक—दीप्त प्रभु को **हविषा**=दानपूर्वक अदन से—यज्ञशिष्ट के सेवन से **सपर्यत**=पूजो।

भावार्थ—प्रभु सबके आश्रयस्थान हैं। ज्ञान की किरणों के पुञ्ज हैं। सर्वनियन्ता व शासक हैं। यज्ञशेष का सेवन करते हुए हम प्रभु का पूजन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पितरों का आना

परा॑ यात पितर आ च॑ यातायं वो॑ यज्ञो मधु॑ना सम॑क्तः।
दत्तो अस्मभ्यं द्रवि॑णेह भद्रं रयिं च॑ नः सर्व॑वीरं दधात॥ १४॥

१. गृहस्थ को सम्यक् पूर्ण करके, वानप्रस्थ में प्रवेश करनेवाले लोग 'पितर' कहलाते हैं।

उनसे प्रार्थना करते हैं कि **परायात**=दूर-दूर देशों में जानेवाले बनो, **च**=और हे **पितरः**=ज्ञानादि द्वारा रक्षण करनेवाले पितरो! **आयात**=समय-समय पर हमारे घरों पर भी आओ। **अयम्**=यह **वः**=आपका **यज्ञः**=संग (यज् संगतिकरणे) **मधुना समक्तः**=माधुर्य से सम्यक् अलंकृत है। आप ज्ञान देकर हमारे जीवनों को मधुर बनाते हो। २. **इह**=यहाँ **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **द्रविणा दत्त उ**=ज्ञानधनों को अवश्य दीजिए **च**=तथा **नः**=हमारे लिए **भद्रम्**=कल्याणकर **सर्ववीरं**=(सर्वः पूर्ण स्वस्थ) स्वस्थ सन्तानों के साथ **रयिम्**=ऐश्वर्य को **दधात**=धारण कीजिए।

भावार्थ—वनस्थ पितरों का समय-समय पर घरों में आना घरों के जीवन को मधुर बनाने में सहायक होता है। ये पितर हमारे लिए ज्ञानधन देकर हमारे घरों को वीरसन्तानों व कल्याणकर धनों से युक्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

द्वादश पितरः

कण्वः कक्षीवान्पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः॥ १५॥

१. 'कण्व' आदि द्वादश पितर **नः**=हमें **अवन्तु**=ज्ञान द्वारा व अपने जीवन द्वारा प्रेरणा देते हुए प्रीणित करें। **कण्वः**=कण-कण करके ज्ञान का संचय करनेवाला अथवा ज्ञानोपदेश करनेवाला। **कक्षीवान्**=(कक्ष्या अश्वरज्जुः) प्रशस्त कक्ष्यावाला—इन्द्रियों को जिसने कसा हुआ है। **पुरुमीढः**=अपने में ख़ूब ही शक्ति का सेचन करनेवाला, **अगस्त्यः**=(अगस्त्य पापपर्वत का संघात (सम्यक् विनाश) करनेवाला, **श्यावाश्वः**=गतिशील इन्द्रियोंवाला—सदा कर्त्तव्यकर्मों में तत्पर **सोभरि**=उत्तमता से वरण करनेवाला, **अर्चनानाः**=पूजा की वृत्तिवाला, अथवा (अर्चनीयं अनः शरीरशकटं यस्य) उत्तम आदरणीय शरीर शकटवाला, **विश्वामित्रः**=सबके प्रति स्नेह की भावनावाला, **अयं जमदग्निः**=यह (जमतः, ज्वलन्तः अग्नयो यस्य) सदा प्रज्वलित यज्ञाग्निवाला, **कश्यपः** (पश्यकः)=ज्ञानी और **वामदेवः**=सुन्दर दिव्य गुणोंवाला।

भावार्थ—'कण्व' आदि पितरों के सम्पर्क में हम भी उनके जीवन से प्रेरणा लेते हुए वैसे ही बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पितरों से प्रेरणा व उपदेश की प्राप्ति

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः॥ १६॥

१. हे **विश्वामित्र**=सबके प्रति स्नेहवाले, **जमदग्ने**=प्रज्वलित यज्ञाग्निवाले, **वसिष्ठ**=उत्तम वसुओंवाले, **भरद्वाज**=अपने में शक्ति भरनेवाले, **गोतम**=प्रशस्त इन्द्रियों व ज्ञान की वाणियोंवाले, **वामदेव**=सुन्दर दिव्यगुणोंवाले पितरो! आप **नः**=हमें **अग्रभीत्**=ग्रहण करो। हम आपके प्रिय हों—आपके चरणों में उपस्थित हों। आप हमारे गृहों पर आने का अनुग्रह करें। २. **शर्दिः**=(छर्दिः, घृ दीप्तौ) ज्ञानदीप्त व (छर्दिः=गृहम्) सबको शरण देनेवाला, **अत्रिः**=काम, क्रोध, लोभ से शून्य (अ-त्रि) **नः**=हमें **नमोभिः**=नम्रता की भावनाओं के द्वारा ग्रहण करें। हम नम्र होकर इनके समीप पहुँचें, प्रथम इनकी नम्रता से प्रभावित होकर नम्र बनने का संकल्प करें। **सुसंशासः**=उत्तम रीति से सम्यक् शासन (अनुशासन=उपदेश) करनेवाले **पितरः**=पितरो! आप **नः मृडत**=हमें सुखी करें। आपका उपदेश हमें उत्तम प्रेरणा देनेवाला हो।

भावार्थ—विश्वामित्र आदि पितरों के समीप हम प्राप्त हो सकें, उनकी नम्रता हमें भी नम्र बनाये। इनके उत्तम उपदेश हमारे जीवनों को सुखी बनानेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

कस्ये मृजाना!

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधाना: प्रतरं नवीयः।
आप्यायमाना: प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु॥ १७॥

१. **कस्ये** (कस् गतिशासनयो:)=गति व शासन में उत्तम प्रभु में—सब गतियों के स्रोत व सबके शासक प्रभु में **मृजानाः**=अपने जीवन को शुद्ध करते हुए साधक लोग **रिप्रम्**=दोषों को **अतियन्ति**=लाँघ जाते हैं। प्रभु का उपासन जीवन को निर्दोष बनाता है। इसप्रकार निर्दोष बनकर **प्रतरम्**=दीर्घ **नवीयः**=स्तुत्य **आयुः दधानाः**=जीवन को धारण करते हैं। २. इस उत्तम गृह में **प्रजया धनेन**=उत्तम सन्तानों व धनों से **आप्यायमानाः**=आप्यायित होते हुए **अध**=अब **गृहेषु**=घरों में **सुरभयः स्याम**=सुगन्धित, अर्थात् प्रशस्त जीवनोंवाले हों अथवा ऐश्वर्यसम्पन्न व दीप्त जीवनवाले हों।

भावार्थ—घरों में प्रभु की उपासना करते हुए हम शुद्ध, निर्दोष, दीर्घ व स्तुत्य जीवनवाले बनें। हमारे सन्तान उत्तम हों—धन-धान्य की कमी न हो। हमारे घर ऐश्वर्यसम्पन्न व दीप्त हों—अर्थात् वहाँ धन के साथ ज्ञान भी हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिग्जगती**॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते

अञ्जते व्य ॒ञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्य ॒ञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते॥ १८॥

१. गतमन्त्र के साधक लोग **अञ्जते**=अपने जीवन को स्वास्थ्य व नीरोगता से अलंकृत करते हैं। **व्यञ्जते**=अपने मनों को विशेषरूप से निर्द्वेषता व प्रेमादि सद्गुणों से सुशोभित करते हैं। **समञ्जते**=अब ये अपने मस्तिष्क को ज्ञान-विज्ञान की दीप्ति से कान्त व सुन्दर बनाते हैं। ऐसे बनकर ये **क्रतुं रिहन्ति**=यज्ञात्मक कर्मों में स्वाद लेते हैं। **मधुना अभ्यञ्जते**=इसप्रकार जीवन को माधुर्य से सजाते हैं, अर्थात् स्वस्थ, निर्मल, दीप्त, यज्ञमय व मधुर जीवनवाले होते हैं। २. **सिन्धोः उच्छ्वासे**=ज्ञानसमुद्र के उच्छ्वसित (अभिवृद्ध) होने पर **पतयन्तम्**=(पत् गतौ) प्राप्त होनेवाले **उक्षणम्**=शक्ति के सेचक **पशुम्**=सर्वद्रष्टा प्रभु को, **हिरण्यपावाः आसु गृह्णते**=(हिरण्यं वै वीर्यम्, हिरण्यं वै ज्योतिः) वीर्य का रक्षण करनेवाले व ज्ञानज्योति को अपने में सुरक्षित करनेवाले लोग यज्ञादि उत्तम क्रियाओं के होने पर, ग्रहण करते हैं। प्रभुदर्शन के लिए वीर्यरक्षण व ज्ञानवृद्धि आवश्यक है।

भावार्थ—हम अपने जीवन को स्वस्थ, निर्मल, दीप्त, यज्ञमय व मधुर बनाएँ। प्रभु तभी प्राप्त होते हैं जब हमारे अन्दर ज्ञानसमुद्र उच्छ्वसित हो उठता है। वीर्य व ज्योति का रक्षण करनेवाले लोग ही प्रभु को यज्ञादि उत्तम क्रियाओं के होने पर ग्रहण करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'अर्वाणः, कवयः, सुविदत्राः' पितरः

यद्वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः॥ १९॥

१. हे **पितरः**=रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त पितरो! **यत्**=जो **वः**=आपका **मुद्रम्**=आनन्दजनक **सोम्यं च**=और सोम के रक्षण की अनुकूलतावाला अतएव सौम्य स्वभाव का साधनभूत ज्ञान है **तेनो** (तेन उ)=उस ज्ञान के साथ ही **सचध्वम्**=आप हमें प्राप्त होओ। आप **हि**=निश्चय से **स्वयशसः भूत**=अपने ज्ञान व कर्मों के कारण यशस्वी हो। आपके सम्पर्क में हमें भी उत्तम ज्ञान व कर्मों की प्रेरणा प्राप्त होगी। २. **ते**=वे आप **अर्वाणः**=(अर्व to kill) वासनाओं का संहार करनेवाले, **कवयः**=क्रान्तदर्शी व ज्ञानी हो। **आशृणोत**=आप हमारी पुकार को अवश्य सुनिए। **विदथे**=ज्ञानयज्ञों में **हूयमानः**=पुकारे जाते हुए आप हमारे लिए **सुविदत्राः**=उत्तम ज्ञानधनों के द्वारा त्राण करनेवाले होते हो।

भावार्थ—पितरों से प्राप्त होनेवाला ज्ञान हमें 'आनन्द व सौम्यता' प्राप्त करनेवाला होता है। ये पितर वासनाओं का संहार करनेवाले, क्रान्तदर्शी व उत्तम ज्ञान व धन से हमारा रक्षण करनेवाले हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यज्ञों में पितरों का आह्वान

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम्॥ २०॥

१. हे पितरो! **ये**=जो आप **अत्रयः**=काम, क्रोध व लोभ से रहित हो, **अङ्गिरसः**=अंग-प्रत्यंग में रसवाले व अंगारों के समान दीप्त तेजवाले हो, **नवग्वाः**=स्तुत्य गतिवाले, **इष्टावन्तः**=यज्ञशील, **रातिषाचः**=दान की क्रिया से समवेत (युक्त) हो और **दधानाः**=धारणात्मक क्रियाओंवाले हो। २. **दक्षिणावन्तः**=प्रशस्त दक्षिणवाले, **सुकृतः**=पुण्यकर्मा **ये**=जो आप **उ**=निश्चय से **स्थ**=हो, वे आप **अस्मिन् बर्हिषि**=इस हमारे द्वारा आयोजित यज्ञ में **आसद्य**=आकर **मादयध्वम्**=आनन्द अनुभव करो अथवा इस यज्ञ में उपस्थित होकर हमारे हर्ष का कारण बनो।

भावार्थ—यज्ञों में 'अत्रि, अंगिरस्, नवग्व, इष्टावान्, रातिषाच, दधान, दक्षिणावान् व सुकृत्' पितरों की उपस्थिति हमारे उत्साह को बढ़ानेवाली होती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यज्ञों द्वारा 'पवित्र व दीप्त लोक' की प्राप्ति

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः।
शुचीदयन्दीध्यतः उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्॥ २१॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! **अधा**=अब **यथा**=जैसे **नः**=हमारे **परासः**=उत्कृष्ट जीवनवाले **प्रत्नासः**=पुराणे **पितरः**=पितर **ऋतम् आशशानाः**=यज्ञ व सत्य को प्राप्त करते हुए **इत्**=निश्चय से **शुचि अयन्**=दीप्तलोक को प्राप्त करनेवाले हुए, उसीप्रकार अब भी हमारे **दीध्यतः**=ज्ञान की दीप्तिवाले, **उक्थशासः**=प्रभु के स्तोत्रों का शंसन करनेवाले पितर **क्षाम भिन्दन्तः**=(क्षमा रात्रिः तत्सम्बन्धि तमः पापम्) अविद्यान्धकारवाली रात्रि के सम्बन्धी अज्ञानान्धकार को विदीर्ण करते हुए **अरुणीः**=ज्ञान की तेजस्वी किरणों को **अपव्रन्**=विवृत करनेवाले होते हैं। ये हमारे लिए अन्धकार को दूर करके प्रकाश को प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—पितर यज्ञों को करते हुए पवित्र, दीप्तलोक को प्राप्त करते हैं। वे ज्ञानी व प्रभु के स्तोता पितर हमारे लिए अज्ञानान्धकार को दूर करके ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शुचन्तः, अग्निम्, वावृधन्तः इन्द्रम्

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन्॥ २२॥

१. **सुकर्माणः**=उत्तम यज्ञरूप कर्मों को करनेवाले, **सुरुचः**=उत्तम ज्ञानदीप्तिवाले, **देवयन्तः**=प्रभु की प्राप्ति की कामनावाले, **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **अयः न**=जैसे एक अयस्कार (लोहार) अग्नि में तपाकर धातु को शुद्ध कर लेता है, इसीप्रकार तपस्या की अग्नि में **जनिमा धमन्तः**=अपने जन्मों को शुद्ध कर लेते हैं। २. ये पितर **अग्निं शुचन्तः**=यज्ञाग्नियों को समिधाओं से दीप्त करते हुए, **इन्द्रं वावृधन्तः**=परमैश्वर्यशाली प्रभु को स्तुतियों के द्वारा बढ़ाते हुए—अपने अन्दर प्रभु के अधिकाधिक प्रकाश को देखते हुए, **नः**=हमारे लिए **उर्वीं गव्याम्**=विशाल ज्ञानवाणी समूह को **परिषदं अक्रन्**=(परितः सीदन्तीम्) चारों ओर आसीन करते हैं। हम चारों ओर ज्ञान की वाणियों से ही घिरे होते हैं—ये ज्ञानवाणियाँ हमारा कवच बनती हैं।

भावार्थ—पितर 'सुकर्मा, सुरुच् व देवयन्' हैं। ये अपने जीवन को तप की अग्नि में परिशुद्ध करते हैं। यज्ञशील व प्रभु के स्तोता होते हुए, हमें ज्ञानवाणियों का कवच प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**सतःपङ्क्तिः** ॥

उपासना से लाभ

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां जनिमान्त्युग्रः।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः॥ २३॥

१. **इव**=जैसे **क्षुमति**=अन्नवाले स्थान में (चरागाह में) एक व्यक्ति **पश्वः यूथा**=पशुओं के झुण्ड को **आ अख्यत्**=समन्तात् देखता है, इसीप्रकार एक उपासक **अन्ति**=उस प्रभु के समीप **देवानां जनिम**=देवों के विकास (प्रादुर्भाव) को देखता है, अर्थात् जैसे एक चरागार में पशु संघ उपस्थित होता है, इसीप्रकार प्रभु की उपासना में दिव्यगुण उपस्थित होते हैं। इनकी उपस्थिति से यह उपासक **उग्रः**=बड़ा तेजस्वी व दीप्त बनता है। २. इस उपासना के द्वारा **मर्तासःचित्**=ये मरणधर्मा पुरुष—आजतक विषयों के पीछे मरनेवाले ये पुरुष **उर्वशीः अकृप्रन्**=(उरु वश्ये अस्याः) अपने को महान् वशीकरणवाला व समर्थ बनाते हैं। सामान्य मनुष्य, उपासना के द्वारा अपने पर शासन करनेवाला व शक्तिशाली बन जाता है। **अर्यः**=(स्वामी) यह जितेन्द्रिय पुरुष **उपरस्य**=(उप्रस्य) बीजवपन द्वारा उत्पन्न हुई-हुई अपनी **आयोः**=सन्तान की **वृधे चित्**=निश्चय से वृद्धि के लिए होता है।

भावार्थ—उपासना से (१) दिव्यगुणों का वर्धन होता है (२) मनुष्य जितेन्द्रिय बनता है (३) सन्तानों को उत्तम बना पाता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वपसः अभूम

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥ २४॥

१. गतमन्त्र का उपासक प्रभु से कहता है कि **ते अकर्म**=आपकी प्राप्ति के लिए जप-तप आदि कर्मों को हमने किया है (मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि) और **स्वपसः**=उत्तम

यज्ञादि कर्मोंवाले हम **अभूम**=हुए हैं। **विभातीः उषसः**=ये प्रकाशमान् उषाएँ **ऋतम् अवस्त्रन्**=सत्य वेदज्ञान को आच्छादित करनेवाली हुई हैं, अर्थात् इन उषाओं में हम स्वाध्याय करनेवाले बने हैं। २. **विश्वं तद् भद्रम्**=वह सब कल्याणकर ही होता है **यद् देवाः अवन्ति**=जिसे माता-पिता-आचार्य आदि देव हममें (Animate, promote, favour) उत्पन्न करते हैं। हम **विदथे**=ज्ञानयज्ञों में **सुवीराः**=बड़े वीर बनते हुए **बृहद् वदेम**=खूब ही ज्ञान की वाणियों का उच्चारण करनेवाले बनें।

भावार्थ—हम प्रातः जप करें, यज्ञ करें, स्वाध्याय को अपनाएँ। देवों से प्रेरित कर्मों को करें। परस्पर मिलने पर ज्ञानचर्चाओं को करें और वीर बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'इन्द्र-धाता-अदिति-सोम'

इन्द्रो॑ मा म॒रुत्वा॒न्प्राच्या॑ दि॒शः पा॑तु बाहु॒च्युता॑ पृथि॒वी द्यामि॑वो॒परि॑।
लो॒क॒कृत॑ः पथि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ २५॥
धा॒ता मा॒ निर्ऋ॑त्या॒ दक्षि॑णाया दि॒शः पा॑तु बाहु॒च्युता॑ पृथि॒वी द्यामि॑वो॒परि॑।
लो॒क॒कृत॑ः पथि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ २६॥
अदि॑तिर्मादि॒त्यैः प्र॒तीच्या॑ दि॒शः पा॑तु बाहु॒च्युता॑ पृथि॒वी द्यामि॑वो॒परि॑।
लो॒क॒कृत॑ः पथि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ २७॥
सोमो॑ मा॒ विश्वै॑र्दे॒वैरुदी॑च्या दि॒शः पा॑तु बाहु॒च्युता॑ पृथि॒वी द्यामि॑वो॒परि॑।
लो॒क॒कृत॑ः पथि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ २८॥

१. **मरुत्वान्**=प्राणोंवाला **इन्द्रः**=शत्रुओं का विद्रावक प्रभु **मा**=मुझे **प्राच्याः दिशः**=पूर्व दिशा से आनेवाली किन्हीं भी आपत्तियों से **पातु**=बचाए। प्राणसाधना करते हुए (मरुत्वान्) हम जितेन्द्रिय बनकर (इन्द्रः) आगे बढ़ते चलें (प्राची), जिससे मार्ग में आनेवाले विघ्नों को हम जीत सकें। २. **बाहुच्युता**=बाहुओं से विनिर्गत—दान में दे दी गई **पृथिवी**=भूमि **इव**=जैसे **उपरि**=ऊपर **द्याम्**=द्युलोक का रक्षण करती है, पृथिवी के दान से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यह दान हमारे लिए स्वर्ग का रक्षण करता है, इसीप्रकार प्राणसाधना व जितेन्द्रियता हमारे लिए प्राची दिशा का (अग्रगति का) रक्षण करती है। ३. इस प्राणसाधना व जितेन्द्रियता के उद्देश्य से ही हम **लोककृतः**=प्रकाश करनेवाले, **पृथिकृतः**=हमारे लिए मार्ग दर्शानेवाले पितरों को **यजामहे**=अपने साथ संगत करते हैं—इन्हें आदर देते हैं। उन पितरों को **ये**=जो **इह**=यहाँ **देवानाम्**=देवों के **हुतभागा**=हुत का सेवन करनेवाले **स्थ**=हैं, अर्थात् जो यज्ञ करके सदा यज्ञशेष का सेवन करते हैं। ४. **धाता**=सबका धारण करनेवाला प्रभु **मा**=मुझे **दक्षिणायाः दिशः**=दक्षिण दिशा से आनेवाली **निर्ऋत्याः**=दुर्गति से **पातु**=रक्षित करें। धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होकर हम दाक्षिण्य (कुशलता) को प्राप्त करें और दुर्गति से अपना रक्षण कर पाएँ। ५. **अदितिः**=(अ-दिति) स्वास्थ्य का देवता **आदित्यैः**=सब दिव्यगुणों के आदान के साथ **मा**=मुझे **प्रतीच्या दिशः**=इस पश्चिम दिशा से **पातु**=रक्षित करें। यह प्रतीची दिशा 'प्रति अञ्च्'=प्रत्याहार की दिशा है। हम प्रत्याहार के द्वारा ही स्वस्थ बनते हैं और दिव्यगुणों का आदान कर पाते हैं। ६. **सोमः**=सोम (शान्त) प्रभु **मा**=मुझे **विश्वैर्देवैः**=सब देवों के साथ **उदीच्याः दिशः पातु**=उत्तर दिशा से रक्षित करें। यह उदीची दिशा उन्नति की दिशा है। इसके रक्षण के लिए सोम या विनीत बनना आवश्यक है। विनीतता के साथ ही सब दिव्यगुणों का वास है।

भावार्थ—हम प्राणसाधना द्वारा जितेन्द्रिय बनते हुए आगे बढ़ें। धारणात्मक कर्मों में लगे हुए हम दाक्षिण्य को प्राप्त करें। स्वाध्याय व दिव्यगुणों के आदान के लिए हम प्रत्याहार का पाठ पढ़ें—इन्द्रियों को विषयव्यावृत करें। हम विनीत बनकर दिव्यगुणों को धारण करते हुए उन्नति की दिशा में आगे बढ़ें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

ऊर्ध्वं धारयातै

धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ २९॥

१. वह **धर्ता**=धारण करनेवाला **ह**=निश्चय से **धरुणः**=सूक्ष्माति सूक्ष्म सत्य तत्त्वों का भी आधारभूत प्रभु **त्वा**=तुझे **ऊर्ध्वं धारयातै**=ऊपर धारण करे—उत्कृष्ट स्थिति में प्राप्त कराए। इसप्रकार ऊपर धारण करे **इव**=जैसेकि **सविता**=सर्वप्रेरक प्रभु **भानुम्**=दीप्त **द्याम्**=द्युलोक को **उपरि**=ऊपर धारण करता है। वस्तुतः प्रभु हमारे भी मस्तिष्करूप द्युलोक को ज्ञानदीप्ति से दीप्त करके हमें ऊपर धारण करनेवाले हों। २. इसी उद्देश्य से हम **इह**=यहाँ उन पितरों का **यजामहे**=आदर करते हैं—संगतिकरण करते हैं उनके प्रति अपना अर्पण करते हैं, **ये**=जोकि **लोककृतः**=प्रकाश करनेवाले हैं, ज्ञान देकर **पथिकृतः**=मार्ग बनानेवाले हैं तथा **देवानां हुतभागाः स्थ**=देवों के हुत का सेवन करनेवाले, अर्थात् यज्ञशील है। इन पितरों के सम्पर्क में हमारे मस्तिष्क अवश्य ज्ञानदीप्त बनेंगे।

भावार्थ—प्रभु धर्ता हैं—धरुण हैं। वे दीप्त द्युलोक को जैसे ऊपर धारण करते हैं, उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क को भी ज्ञानदीप्त करके हमें उन्नत करते हैं। हम इस ज्ञानप्रकाश द्वारा मार्गदर्शक, यज्ञशील पितरों के चरणों में नम्रता से उपस्थित होकर ज्ञान प्राप्त करने के लिए यत्नशील होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**३० पञ्चपदातिजगती; ३१ विराट्शक्वरी; ३२-३५ भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ ३०॥
दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ ३१॥
प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ ३२॥
उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ ३३॥
ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ ३४॥
ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ ३५॥

१. हे प्रभो! **पुरा संवृतः**=इस शरीर से आच्छादित हुआ-हुआ मैं **त्वा**=आपको **प्राच्यां दिशि**=आगे बढ़ने की दिशा के निमित्त तथा **स्वधायाम्**=आत्मतत्त्व के धारण के निमित्त **आदधामि**=इसप्रकार धारण करता हूँ, **इव**=जैसे **बाहुच्युता**=बाहु से दी गई **पृथिवी**=भूमि **उपरि**=ऊपर **द्याम्**=स्वर्ग को (आकाश को) धारण करती है। प्रभु का धारण हमें अग्रगति में स्थापित करता है और आत्मशक्ति को धारण कराता है। इसी उद्देश्य से हम **लोककृतः**=प्रकाश करनेवाले, **पथिकृतः**=हमारे लिए मार्गों को बनानेवाले उन पितरों का **यजामहे**=आदर व संग करते हैं, **ये**=जो पितर **इह**=यहाँ **देवानां हुतभागाः स्थ**=देवों के हुत का सेवन करनेवाले हैं, अर्थात् यज्ञशील हैं। इन पितरों का सम्पर्क हमें भी उन-जैसा बनाएगा। २. इसीप्रकार **दक्षिणायां दिशि**=दक्षिण दिशा के निमित्त हम प्रभु को धारण करते हैं। धारण किये गये प्रभु हमें दाक्षिण्य प्राप्त कराते हैं—कर्मों में कुशलता प्राप्त कराते हैं। यह कर्मकुशलता ऐश्वर्यवृद्धि का कारण बनती है। यह ऐश्वर्य हमें विलास में न ले-जाए, अतः **प्रतीच्यां दिशि**=(प्रति अञ्च्) इस पश्चिम व प्रत्याहार की दिशा के निमित्त प्रभु को हृदयों में स्थापित करते हैं। हृदयों में प्रभुस्मरण हमें वासनाओं का शिकार न होने देगा। इसप्रकार **उदीच्यां दिशि**=उदीची दिशा के निमित्त मैं प्रभु को धारण करता हूँ। प्रभुस्मरण से मैं ऊपर और ऊपर उठता चलूँगा। यह उत्कर्ष होता ही चले, अतः **ध्रुवायां दिशि**=ध्रुवता की दिशा के निमित्त प्रभु को धारण करूँ और इस ध्रुवता के द्वारा **ऊर्ध्वायां दिशि**=ऊर्ध्व दिशा के निमित्त प्रभु को धारण करता हूँ। हृदयस्थ प्रभु मुझे सर्वोच्च स्थिति में प्राप्त कराएँगे। ३. अथवा इन सब दिशाओं में प्रभु की महिमा व सत्ता का अनुभव करते हुए उपासक कह उठता है—आगे-पीछे सब ओर से मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप अनन्तवीर्य व अमित विक्रम हैं। सबमें समाये हुए हैं—आप सर्व हैं। वस्तुतः ऐसा अनुभव करनेवाला व्यक्ति ही प्राणतत्त्व का धारण करनेवाला होता है।

भावार्थ—इस शरीर को प्राप्त करके इसे स्वस्थ रखते हुए हम 'अग्रगति, दाक्षिण्य, विषयव्यावृत्ति, उन्नति, स्थिरता व चरमोत्कर्ष' को प्राप्त करते हुए आत्मतत्त्व के धारण के निमित्त प्रभु का स्मरण करें। सब दिशाओं में प्रभु की महिमा को देखते हुए ही हम 'स्व-धा' में स्थापित होंगे। इसी उद्देश्य से उत्तम पितरों के सम्पर्क में विनीतता से ज्ञान को बढ़ाने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आसुर्यनुष्टुप् (एकावसाना)**; ३७ **आसुरीगायत्री (एकावसाना)**॥

'उदपूः-मधुपूः-वातपूः' धर्ता प्रभु

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि॥ ३६॥
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि॥ ३७॥

१. हे प्रभो! आप **धर्ता असि**=हम सबका धारण करनेवाले हैं। आप अपने उपासकों के शरीरों को स्वस्थ करते हैं। उपासना से हमारी वृत्ति विलास की ओर नहीं झुकती और परिणामतः हम स्वस्थ बने रहते हैं। **धरुणः असि**=आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों का भी धारण करनेवाले हैं—आप हमारे मनों व बुद्धियों को भी सुरक्षित रखते हैं। आपकी उपासना से हमारे मन निर्मल व बुद्धियाँ सूक्ष्मार्थग्राहिणी बनती हैं। **वंसगः असि**=हे प्रभो! आप हमें (वंसानां वननीयगतीनां गमयता) सम्भजनीय, सुन्दर व्यवहारों को प्राप्त करानेवाले हैं। प्रभु का उपासक सदा यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होता है। २. हे प्रभो! आप **उदपूः असि**=(उदकस्य पूरयिता) हमारे शरीरों में रेतःकणों (उदक) के पूरयिता हैं। इन रेतःकणों के रक्षण के द्वारा **मधुपूः असि**=माधुर्य के

पूरयिता हैं। विलासी व शक्ति का अपव्य करनेवाले लोग ही कटुवचनों का प्रयोग करते हैं। रेत:कणों के रक्षण व माधुर्य के द्वारा आप **वातपूः असि**=(वातस्य पूरयिता) वात का—प्राणशक्ति का पूरण करनेवाले हैं। रेत:कणों का अपव्य व कटुता प्राणशक्ति का संहार करती है।

भावार्थ—प्रभु हमारे शरीरों को धारण करते हैं—मन व बुद्धि का भी धारण करते हैं। इसप्रकार वे हमें 'स्वस्थ शरीर, मन व बुद्धि' वाला बनाकर उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करते हैं। प्रभु हमारे रेत:कणों का व माधुर्य का पूरण करके प्राणशक्ति का पूरण करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यमे इव यतमाने

इतश्च मामुतश्चावतां यमेइव यतमाने यदैतम्।
प्र वां भरन्मानुषा देवयन्त आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने॥ ३८॥

१. प्रभु गृहस्थ पति-पत्नी से कहते हैं कि आप दोनों **इतः च अमुता च**=इधर से और उधर से—इस लोक से और परलोक से—इहलोक के अभ्युदय व परलोक के निःश्रेयस के द्वारा—**मा अवताम्**=मुझे प्रीणित करनेवाले होओ। अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करते हुए आप मेरे प्रिय बनो। यह होगा तभी **यदा**=जबकि **यमे इव**=एक युगल की भाँति—बिलकुल मिलकर चलनेवालों की भाँति **यतमाने**=घर को स्वर्ग बनाने के लिए यत्नशील होते हुए तुम दोनों **एतम्**=गति करते हो। पति-पत्नी की क्रियाएँ बिलकुल मिलकर हों—वे एक-दूसरे के पूरक बनें। परस्पर का विरोध तो घर को नरक ही बना देता है। २. **वाम्**=आप दोनों को **मानुषा**=मानवमात्र का हित करनेवाले **देवयन्तः**=दिव्यगुणों को अपनाने की कामनावाले पुरुष **प्रभरन्त**=उत्कृष्ट भावनाओं से भरनेवाले हों। इनसे आपको उत्कृष्ट प्रेरणा प्राप्त हो। आप दोनों **विदाने**=स्वाध्याय द्वारा ज्ञान की प्रवृत्तिवाले होते हुए **उ**=निश्चय से **स्वं लोकं आसीदताम्**=अपने घर में आसीन होओ। इधर-उधर क्लबों में न जाकर घर को ही अपना प्रिय स्थान बनाओ।

भावार्थ—गृहस्थ में पति-पत्नी एक युगल की भाँति मिलकर घर को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करते हुए, अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करते हुए प्रभु के प्रिय बनें। घरों में मानवहित में प्रवृत्त देवपुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करते हुए अतिरिक्त समय को घरों को अच्छा बनाने में लगाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**परात्रिष्टुप्पङ्क्तिः**॥

'स्वस्थ, नम्र, ज्ञानी'

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः।
वि श्लोक एति पथ्ये व सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत्॥ ३९॥

१. प्रभु कहते हैं कि हे पति-पत्नि! आप दोनों **नः इन्दवे**=हमारे ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए **स्वासस्थे**=(सु आस स्थे) स्वस्थ शरीररूप उत्तम स्थान में स्थित होनेवाले **भवतम्**=होओ। मैं **वाम्**=तुम्हें **नमोभिः**=नमस्कारों के साथ **पूर्व्यं ब्रह्म**=सृष्टि के प्रारम्भ में दिये जानेवाले वेदज्ञान से **युजे**=युक्त करता हूँ। इसप्रकार 'शरीर के स्वस्थ, मन के नमन के भावों से युक्त तथा मस्तिष्क के ज्ञानयुक्त' होने पर प्रभु का ऐश्वर्य प्राप्त होता है। २. तुम्हें **श्लोकः**=प्रभु-स्तवनात्मक पद्य **वि एतु**=विशेषरूप से प्राप्त हो, अर्थात् तुम स्तवन करनेवाले बनो तथा **पथ्या इव सूरिः**=पथ्य भोजनों की भाँति प्रेरक ज्ञानी पुरुष भी तुम्हें विशेषरूप से प्राप्त हो। पथ्यभोजन तुम्हारे शरीरों को स्वस्थ बनाएँ और वह प्रेरक ज्ञानी तुम्हारे मस्तिष्कों को दीप्त ज्ञानवाला करे। **विश्वेः**=सब **अमृतासः**=विषयों के पीछे न मरनेवाले लोग **एतत् शृण्वन्तु**=इस वेदज्ञान को सुनें। 'सूरि' द्वारा

दिये जानेवाले ज्ञान का श्रवण करें।

भावार्थ—हम स्वस्थ शरीर, नम्र मन व दीप्त मस्तिष्कवाले बनकर प्रभु के ऐश्वर्य को प्राप्त करें। हमें प्रभु का स्तोत्र, पथ्यभोजन व ज्ञानियों का सम्पर्क प्राप्त हो। सब अमृत पुरुष ज्ञानियों द्वारा दिये जानेवाले ज्ञान का श्रवण करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

रुपः

त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति॥ ४०॥

१. **रुपः** (रुप् to suffer violent pain)=अपने को तपस्या की अग्नि में तपानेवाला ब्रह्मचारी **त्रीणि पदानि अनु अरोहत्**=क्रमशः तीनों पदों का आरोहण करता है, सबसे पूर्व तैजस बनता है—तेजस्वी शरीरवाला, द्वितीय स्थान में 'वैश्वानर', सबके प्रति मन में हितार्थ भावनावाला बनता है तथा तृतीय स्थान में 'प्राज्ञ' अच्छी तरह ज्ञान का सम्पादन करनेवाला होता है। **व्रतेन**=इन तीन पदों पर आरोहण करनेरूप व्रत के द्वारा **चतुष्पदीम् अनु ऐतत् (ऐत्)**=चार पदोंवाली इस 'ऋक्, यजुः साम, अथर्व' रूप वेदवाणी को प्राप्त करता है। २. इस वेदवाणी का अध्ययन करता हुआ यह 'रुप' **अक्षरेण**='ओंकार' इस अक्षर के द्वारा (ओमित्येदक्षरमुद्गीथमुपासीत्) **अर्कम्**=अर्चनीय प्रभु को **प्रतिमिमीते**=जानने का प्रयत्न करता है और **ऋतस्य नाभौ**=(ऋत्=यज्ञ) यज्ञ के बन्धन में **अभिसंपुनाति**=अपने को अन्दर व बाहिर से सम्यक् पवित्र करता है। यज्ञों में यह सतत प्रवृत्त रहता है। ये यज्ञ इसे स्वस्थ शरीरवाला व पवित्र मनवाला बनाते हैं। यही अन्दर व बाहिर से पवित्रीकरण है।

भावार्थ—तपस्या की अग्नि में अपने को तपाते हुए हम 'तैजस, वैश्वानर व प्राज्ञ' बनें। इस व्रत के द्वारा 'ऋक्, यजुः साम, अथर्व' रूप वेदवाणी को प्राप्त करें। वेदों के सारभूत 'ओम्' इस अक्षर के जप से प्रभु को जानने का यत्न करें। यज्ञों में बद्ध होते हुए स्वस्थ शरीर व पवित्र मनवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवों का भी पतन, प्रजाओं का उत्थान

देवेभ्यः कर्मवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्व१मा रिरेच॥ ४१॥

१. गतमन्त्र के अनुसार यज्ञों में अपने को बद्ध करनेवाले लोग 'देव' बनते हैं, परन्तु ये देव भी अहंकार में आकर फिर पतित हो जाते हैं। यह पतन प्रभु की ओर से न होकर उनके अपने अहंकार का ही परिणाम होता है। मन्त्र में इसी भाव को इस रूप में कहते हैं कि **देवेभ्यः**=देवों के लिए **कं मृत्युम् अवृणीत**=किस मृत्यु का प्रभु वरण करते हैं? वस्तुतः प्रभु नहीं, उन देवों का अहंकार ही उनकी मृत्यु का कारण बनता है। इसीप्रकार प्रभु **प्रजायै**=सामान्य लोगों के लिए **किम् अमृतं न अवृणीत**=किस अमृततत्त्व का वरण नहीं करते? प्रभु प्रत्येक व्यक्ति को अमृतत्त्व के लिए आवश्यक साधनों को प्राप्त कराते हैं। यदि हम उन साधनों का सदुपयोग नहीं करते, तो इसमें प्रभु का क्या दोष है? २. इस संसार में **बृहस्पतिः ऋषिः**=ज्ञान का स्वामी तत्त्वद्रष्टा पुरुष—वासनाओं का संहार करनेवाला पुरुष (ऋष् to Kill) **यज्ञम् अतनुत**=यज्ञ का विस्तार करता है—यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त होता है। वस्तुतः यह ऋषि उस

सर्वनियन्ता प्रभु का शरीर बनता है, प्रभु इसमें आत्मरूप से होते हैं और **यमः**=सर्वनियन्ता प्रभु अपने इस **प्रियां तन्वम्**=प्रिय शरीरभूत 'बृहस्पति ऋषि' को **आरिरेच**=सब दोषों से रिक्त कर देते हैं। प्रभु इसके जीवन को निर्दोष बना देते हैं।

भावार्थ—देव बनकर भी अहंकारवश हम पतन की ओर चले जाते हैं। सामान्य मनुष्य होते हुए भी प्रभुप्रदत्त साधनों का सदुपयोग करते हुए हम अमृतत्त्व को प्राप्त करते हैं, अतः हम ज्ञानी व वासनाशून्य बनकर प्रभु का निवासस्थान बनें। प्रभु हमारे जीवनों को निर्दोष बनाये रक्खेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

एक देव की दिनचर्या

त्वम॑ग्न ईडि॒तो जा॑तवे॒दोऽवा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सुर॒भीणि॑ कृ॒त्वा।
प्रादा॑: पि॒तृभ्य॑: स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑॥ ४२॥

१. हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **त्वम्**=तू **ईडितः** (ईडा संजाता अस्य)=प्रभुपूजन की वृत्तिवाला बना हुआ है। तू अपने प्रत्येक दिन को प्रभुपूजन से ही प्रारम्भ करता है। उपासना के बाद तू मौलिक स्वाध्याय के द्वारा **जातवेदाः**=(जातः वेदो यस्य) विकसित ज्ञानवाला बनता है। अब तू **सुरभीणि हव्यानि**=सुगन्धित हव्य पदार्थों को **कृत्वा**=सम्यक् सज्जित करके **अवाट्**=अग्नि के लिए प्राप्त कराता है। इन हव्य पदार्थों के द्वारा तू नित्य अग्निहोत्र करता है। २. अग्निहोत्र के बाद **पितृभ्यः प्रादाः**=अपने वृद्ध माता-पिता के लिए भोजन देता है। **ते**=वे **स्वधया**=आत्म-धारण के हेतु से **अक्षन्**=उस भोजन को खाते हैं, अर्थात् शरीरधारण के लिए आवश्यक भोजन की मात्रा को ही ग्रहण करते हैं। अब हे देववृत्तिवाले पुरुष! **त्वम्**=तू भी **प्रयता हवींषि**=पवित्र यज्ञशेष हव्य पदार्थों को ही **अद्धि**=खा। वह यज्ञशेष का सेवन ही अमृतसेवन है।

भावार्थ—हमारी दिनचर्या का क्रम यह हो—'उपासना, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, स्वयं यज्ञशेष का सेवन'। यही 'देव' बनने का मार्ग है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पितरों के सम्पर्कों से घर में 'श्री व शक्ति' का निवास

आसी॑नासो अरु॒णीना॑मु॒पस्थे॑ र॒यिं ध॑त्त दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य।
पु॒त्रेभ्य॑: पितर॒स्तस्य॒ वस्व॒: प्र य॑च्छत॒ त इ॒होर्जं॑ दधात॥ ४३॥

१. वनस्थ पितर (पिता, पितामह, प्रपितामह) **अरुणीनाम्** (अरुण्या गाव उषसाम्)=उषाकालों की अरुणकिरणों का प्रकाश होने पर **उपस्थे आसीनासः**=प्रभु की उपासना में आसीन होते हैं। हे पितरो! आप **दाशुषे मर्त्याय**=आपके प्रति अपना अर्पण करनेवाले मनुष्य के लिए **रयिं धत्त**=ऐश्वर्य को धारण कीजिए। ये पितर अपने प्रति अपना अर्पण कर देनेवाले सन्तानों के पारस्परिक संघर्ष को समाप्त करके उनके ऐश्वर्य को विनाश से बचाते हैं। २. सन्तानों के पितरों के प्रति अर्पण करने पर हे **पितरः**=पितरो! आप **तस्य वस्वः प्रयच्छत**=उस धन को दीजिए, जो पारस्परिक विवादों में ही समाप्त न हो। हे पितरो! **ते**=वे आप **इह**=इस घर में **ऊर्जम् दधात**=बल व प्राणशक्ति को धारण कीजिए। भाइयों को परस्पर एक करके उनकी शक्ति को बढ़ानेवाले होओ।

भावार्थ—पितर समय-समय पर घरों में आते हैं। ये प्रातः ही प्रभु के उपासन में आसीन होते हैं। ये सन्तानों के पारस्परिक कलहों को समाप्त करके उनमें 'वसु व ऊर्ज्' का स्थापन

करते हैं, घर को 'श्री व शक्ति' से सम्पन्न बना देते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

अग्निष्वात्त पितर

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात॥ ४४॥

१. **अग्निषु आत्ताः**=अग्नियों के चरणों में जिन्होंने अत्याधिक ज्ञान प्राप्त किया है—'माता, पिता व आचार्यों' से 'चरित्र, शिष्टाचार व ज्ञान'-सम्पन्न बने हैं, ऐसे **पितरः**=पितरो! आप **इह आगच्छत**=यहाँ हमारे जीवन में आइए। आप **सदःसदः सदत**=प्रत्येक सभा में आकर बैठिए। **सुप्रणीतयः**=आप हमें उत्कृष्ट मार्ग से ले-चलनेवाले हैं। २. आप **बर्हिषि**=इन यज्ञों में **प्रयतानि**=पवित्र **हवींषि अत्त उ**=हवियों को ही निश्चय से खानेवाले होओ। आप सदा पवित्र भोजन को ही यज्ञशेष के रूप में ग्रहण करते हैं **च**=और आप **नः**=हमारे सब सन्तानों को **सर्ववीरम्**=सबल बनानेवाले **दधात**=होओ। वस्तुतः पितर सन्तानों को मेल का पाठ पढ़ाते हुए उन्हें सशक्त व सम्पन्न बनाते हैं।

भावार्थ—जिन्होंने 'माता, पिता व आचार्यों' से स्वयं अत्यधिक ज्ञान प्राप्त किया है, उन पितरों से हमें भी उसीप्रकार ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा मिले। घरों में आसीन होकर ये पितर सन्तानों का सुप्रणयन करें। पितरों से प्रेरणा प्राप्त करके हम पवित्र यज्ञशेष का ग्रहण करनेवाले बनें। 'वीरता व धन' से युक्त हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यज्ञरूप प्रिय निधियों के निमित्त पितरों को पुकारना

उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्ये षु निधिषु प्रियेषु।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥ ४५॥

१. हमसे **सोम्यासः**=अत्यन्त विनीत स्वभाववाले, निरभिमान **पितरः**=पितर **उपहूताः**=पुकारे गये हैं। इन्हें हमने **बर्हिषि**=यज्ञों के निमित्त पुकारा है। सब यज्ञशील होते हुए ये हमें भी यज्ञमय जीवनवाला बनाते हैं। **एषु प्रियेषु**=इन प्रिय निधिरूप यज्ञों के निमित्त हम इन पितरों को पुकारते हैं। यज्ञों में अग्नि अन्नाद है तो वह वृष्टि द्वारा उत्तम खाद्य अन्नों को भी प्राप्त कराता है। 'अग्निहोत्रं स्वयं वर्षकः', 'यज्ञाद् भवति पर्जन्यः, पर्जन्यादन्न संभवः' अग्निहोत्र से वृष्टि होती है। इन यज्ञों से पर्जन्य का उद्भव होकर अन्न का सम्भव होता है, एवं हमारी सब इष्ट-कामनाओं को पूर्ण करनेवाले ये यज्ञ हमारे लिए इष्टकामधुक् होते हुए हमारे प्रिय निधि हैं ही। सौम्य पितर आते हैं और वे हमें इन यज्ञों का उपदेश करते हैं। २. **ते**=वे 'पिता, पितामह व प्रपितामह' आदि पितर **आगमन्तु**=आएँ। **ते**=वे **इह**=यहाँ **श्रुवन्तु**=हमारी प्रार्थनाओं को व समस्याओं को सुनें और **अधिब्रुवन्तु**=हमें उन समस्याओं को सुलझाने के लिए सदुपायों का उपदेश दें और इसप्रकार **ते**=वे **अस्मान् अवन्तु**=हमें रक्षित करें।

भावार्थ—विनीत, यज्ञशील पितरों को हम पुकारते हैं। वे हमें इन प्रिय निधिरूप यज्ञों में स्थापित करते हैं। आकर हमारी समस्याओं को सुनते हैं और उनके सुलझाने के लिए सदुपदेश करते हैं। इसप्रकार वे हमारा रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

रमणात्मक पठन, यज्ञशेष का अदन

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु॥ ४६॥

१. **ये**=जो **नः**=हमारे **पितुः पितरः**=पिताजी के भी पितर हैं, **ये**=जो **पितामहः**=हमारे पितामह हैं, वे **वसिष्ठाः**=काम-क्रोध को वशीभूत करके अत्यन्त उत्तम निवासवाले बने हैं। **सोमपीथम् अनूजहिरे**=ये सोम पान को अनुक्रमेण आत्मसात् करते हैं। सोम का पान ही उन्हें उत्तम निवासवाला बनाता है। २. **तेभिः**=उन पितरों के साथ **यमः**=संयत जीवनवाला विद्यार्थी **संरराणः**=सम्यक् क्रीड़ा करता हुआ—क्रीड़ा में ही सब-कुछ सीखता हुआ, **हवींषि उशन्**=हवियों को चाहता हुआ **उशद्भिः**=हित चाहनेवाले आचार्यों के साथ **प्रतिकामम् अत्तु**=जब-जब शरीर को इच्छा हो, अर्थात् आवश्यकता अनुभव हो, तब-तब इस हवीरूप भोजन को खाये। ३. यहाँ दो बातें स्पष्ट हैं—पहली तो यह कि पढ़ाने का प्रकार इतना रुचिकर हो कि विद्यार्थियों को पढ़ाई खेल ही प्रतीत हो। दूसरी बात यह कि हम भोजन तभी करें जब शरीर को आवश्यकता हो। वह भी त्यागपूर्वक यज्ञ करके यज्ञशेष का ही ग्रहण करें।

भावार्थ—हमें पितर रोचकता से ज्ञान देनेवाले हों। हम यज्ञों के प्रति कामनावाले हों। भोजन को आवश्यकता होने पर यज्ञशेष के रूप में ही ग्रहण करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

किन पितरों के सम्पर्क में

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः॥ ४७॥

१. पितर वे हैं **ये**=जो **तातृषुः**=प्राणिमात्र के हित के लिए अत्यन्त पिपासित होते हैं। **देवत्रा जेहमानाः**=देवों में क्रमशः जानेवाले होते हैं, अर्थात् निरन्तर दैवी सम्पत्ति के अर्जन में लगते हैं। **होत्राविदः**=अग्निहोत्र को अच्छी प्रकार समझनेवाले हैं—यज्ञों के महत्त्व को जानते हैं। **अर्कैः**=मन्त्रों के द्वारा **स्तोमतष्टासः**=प्रभु-स्तोत्रों को करनेवाले हैं। २. प्रभु कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **देववन्दैः**=देव की वन्दना करनेवाले—प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त, **सत्यैः**=सत्य जीवनवाले, **कविभिः**=क्रान्तदर्शी, **ऋषिभिः**=(ऋष् to kill) वासनाओं को विनष्ट करनेवाले **घर्मसद्भिः**= सोमयागों में आसीन होनेवाले—यज्ञशील पितरों के साथ **सहस्रम् आयाहि**=(सहस्) आनन्दपूर्वक गतिवाला हो। अथवा इनके सम्पर्क में अपरिमित ज्ञानधन को प्राप्त होनेवाला हो।

भावार्थ—पितर वे ही हैं जो लोकहित के लिए प्रबल कामनावाले, यज्ञशील, प्रभु-स्तवन परायण, ज्ञानी, सत्यवादी व वासनाशून्य हैं। इनके सम्पर्क में आकर हम भी ज्ञानी बनें और प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर चलें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'सत्यवादी-सुविदत्र' पितरों के सम्पर्क में

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः॥ ४८॥

१. **ये**=जो **सत्यासः**=सदा सत्य बोलनेवाले हैं। **हविरदः**=हवि को ही खानेवाले हैं और **हविष्पाः**=हवि का ही पान करनेवाले हैं, अर्थात् जिनका खानपान हविरूप है—जो यज्ञशेष को

ही खानेवाले हैं। **तुरेण:**=शत्रुओं का संहार करनेवाले **इन्द्रेण**=सर्वशक्तिमान् प्रभु के साथ तथा **देवै:**=दिव्यगुणों के साथ **सरथम्**=समान रथ में गति करते हैं। यह शरीर ही रथ है। इसे वे प्रभु के दिव्यगुणों का अधिष्ठान बनाते हैं। २. प्रभु कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू इन **सुविदत्रेभि:**=उत्तम ज्ञान के द्वारा त्राण करनेवाले, **परै:**=उत्कृष्ट जीवनवाले, **पूर्वै:**=अपना पूरण करनेवाले—न्यूनताओं को दूर करनेवाले, **ऋषिभि:**=(ऋष् to kill) वासनाओं को विनष्ट करनेवाले **घर्मसद्भि:**=यज्ञों में आसीन होनेवाले पितरों के सम्पर्क में रहता हुआ **अर्वाङ् आयाहि**=अपने हृदयदेश में हमारी ओर आनेवाला हो।

भावार्थ—हम सत्यवादी, यज्ञशेष का सेवन करनेवाले, प्रभु के साथ विचरनेवाले, ज्ञान के द्वारा रक्षण करनेवाले, उत्कृष्ट; न्यूनताशून्य जीवनवाले, वासनाओं का संहार करनेवाले, यज्ञशील पितरों के सम्पर्क में अपने जीवनों को भी इसी प्रकार का बनाते हुए प्रभु की ओर चलनेवाले बनें।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**यम:, मन्त्रोक्ता:**॥ छन्द:—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

ऊर्णम्रदा: पृथिवी

उप॑ सर्प मा॒तरं॑ भूमि॑मे॒तामु॑रु॒व्यच॑सं पृथि॒वीं सु॒शेवा॑म्।
ऊर्ण॑म्रदाः पृथि॒वी दक्षि॑णावत ए॒षा त्वा॑ पातु॒ प्रप॑थे पु॒रस्ता॑त्॥ ४९॥

१. तू **एताम्**=इस **मातरम्**=माता की तरह सबका पोषण करनेवाली, **उरुव्यचसम्**=अत्यन्त व्याप्तिवाली **पृथिवीम्**=विस्तृत **सुशेवाम्**=उत्तम कल्याण करनेवाली **भूमिम्**=भूमि को **उपसर्प**=समीपता से प्राप्त हो, अर्थात् इस भूमि पर गति करनेवाला हो। तू उदास होकर विषण्ण व गतिशून्य न हो जाए। २. **दक्षिणावते**=दानशील पुरुष के लिए—उदार व्यक्ति के लिए यह **पृथिवी**=विस्तारवाली भूमि **ऊर्णम्रदा:**=आच्छादन करनेवाली व मृदुस्वभाव है। दानशील पुरुष के लिए यह पृथिवी कठोर नहीं होती। **एषा**=यह भूमि **त्वा**=तुझे **पुरस्तात्**=आगे और आगे **प्रपथे**=प्रकृष्ट मार्ग में **पातु**=रक्षित करे।

भावार्थ—हम इस पृथिवी को माता के समान जानते हुए उदासी से ऊपर उठकर कर्त्तव्यकर्मों में प्रेरित हों। यह पृथिवी दानशील व्यक्ति का रक्षण करनेवाली है—उसके लिए मृदु है, उसे आगे ले-चलनेवाली है, अर्थात् यहाँ दानशील व्यक्ति का ही कल्याण है।

ऋषि:—**अथर्वा**॥ देवता—**यम:, मन्त्रोक्ता:, भूमि:**॥ छन्द:—**प्रस्तारपङ्क्ति:**॥

सूपायना—सूपसर्पणा

उच्छ्व॑ञ्चस्व पृथिवि॒ मा नि बा॑धथाः सूपाय॒नास्मै॑ भव सूपसर्प॒णा।
मा॒ता पु॒त्रं यथा॑ सि॒चाभ्ये॑॑नं भूम ऊर्णु॒हि॥ ५०॥

१. हे **पृथिवि**=अपनी सन्तानों की शक्तियों का विस्तार करनेवाली मात:! तू उदासी को छोड़कर **उत्सु अञ्चस्व**=उत्तमता से गति करनेवाली हो। **मा निबाधथा:**=व्यर्थ के शोक से अपने को पीड़ित मत कर। **अस्मै**=अपनी इस सन्तान के लिए **सूपायना भव**=सुगमता से समीप प्राप्त होनेवाली हो। **सु उपसर्पणा**=बच्चे तेरे समीप सुगता से प्राप्त हो सकें। २. हे **भूमे**=भूमिमात:! तू भी **एनम्**=साथी के चले जाने से दु:खित इस जन को **अभि ऊर्णुहि**=अभित: आच्छादित करनेवाली हो, अर्थात् इसे न तो खानपान की कमी हो, न ही इसके मानस उत्साह में कमी आये। इसको तू इसप्रकार सुरक्षित कर **यथा**=जैसे **माता**=माता **पुत्रम्**=पुत्र को **सिचा**=वस्त्र प्रान्त से ढककर सुरक्षित कर लेती है।

भावार्थ—माता शोक से अपने को पीड़ित न करती हुई बच्चों के पालन में आनन्द का अनुभव करे। वह बच्चों के लिए 'सूपायना व सूपसर्पणा' हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

घृतश्चुतो गृहासः

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र॥ ५१॥

१. **उत् सु अञ्चमाना**=उत्साहयुक्त हुई-हुई—उत्तमता से गति करती हुई **पृथिवी**=शक्तियों का विस्तार करनेवाली माता **सुतिष्ठतु**=उत्तमता से स्थित हो। यह उदास होकर खाट पकड़कर न बैठे जाए। **इह**=निश्चय से इस घर में **सहस्रं मितः**=सहस्र संख्याक धन **उपश्रयन्ताम्**=आश्रय करें। २. **ते**=वे **गृहासः**=घर **घृतश्चुतः**=घृत का क्षरण करनेवाले हों। इन घरों में घृत की धाराएँ बहें। ये घर **विश्वाहा**=सदा **अत्र**=यहाँ—इस जीवन में **अस्मै**=इस अकेले रह गये जन के लिए **स्योनाः**=सुख देनेवाले तथा **शरणाः**=रक्षिता **सन्तुः**=हों। बच्चों के पिता चले भी गये हैं तो भी अन्य मामा, चाचा आदि लोग सहायक बने रहें। वे अपनी ज़िम्मेवारी को पहले से अधिक समझते हुए अपने कर्त्तव्य को उत्तमता से निभाएँ।

भावार्थ—माता के पुरुषार्थ व बुद्धिपूर्वक व्यवहार से घर में धनों की कमी न हो। घर पूर्ववत् घृत के बाहुल्यवाले बने रहें और अन्य बान्धवजन सहारा दिये रक्खें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

घर

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु॥ ५२॥

१. हे गृह! **ते पृथिवीम्**=तेरी भूमि को **उत् स्तभ्नामि**=ऊपर थामता हूँ। घर के पाये (Pedestal) को कुछ ऊँचा रखता हूँ। इससे सील का ख़तरा न रहकर स्वास्थ्य के लिए यह घर उपयुक्त रहता है। **त्वत् परि**=तेरे चारों ओर **इमम्**=इस **लोगम्**=पार्थिव ढेर को—मुँडेर को—**निदधन्**=रखता हुआ **अहम्**=मैं **मा उ रिषम्**=मत ही हिंसित होऊँ। घर के चारों ओर चारदीवारी हो ताकि पशुओं आदि का अवाञ्छनीय प्रवेश न होता रहे। २. **एतां स्थूणाम्**=घर के इस स्तम्भ को **ते पितरः**=तेरे पितर **धारयन्तु**=धारण करनेवाले हों। बच्चों के पिता के चले जाने पर मामा, चाचा, ताया आदि बड़ों का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि वे घर के बोझ को अपने कन्धों पर लें। **तत्र**=वहाँ—उस घर में **यमः**=सर्वनियन्ता प्रभु **ते**=तेरे लिए **सादना कृणोतु**=बैठने के स्थानों को करे। तू यहाँ घर में कर्त्तव्यपालन करती हुई ठहरनेवाली बन। प्रभु-स्मरण तुझे शक्ति व उत्साह दे।

भावार्थ—घर का पाया ऊँचा हो, नीरोगता के लिए यह आवश्यक है। चारदीवारी ठीक हो ताकि अवाञ्छनीय पशु आदि का प्रवेश न हो। बच्चों के पिता के चले जाने पर रिश्तेदार घर के बोझ को अपने कन्धों पर लें। घर में प्रभु-स्मरण विलुप्त न हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शरीररूप चमस्

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ताम्॥ ५३॥

१. प्रगतिशील जीव को 'अग्नि' कहते हैं। यह प्रगतिशील जीव अपने इस शरीर को **चमस्**=सोमपात्र बनाता है। इस शरीररूप चमस् में वह सोम (वीर्य) को सुरक्षित रखता है। जैसे घृतपूर्ण चम्मच कुछ ढेड़ा हो जाए तो घृत के गिरने की आशंका हो जाती है, उसीप्रकार इस शरीररूप चमस् के भी टेढ़ा होने से—इसमें कुटिलता के आने से—सोम का नाश हो जाता है, अतः मन्त्र में कहते हैं कि हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव। **इमं चमसम्**=इस सोम के पात्रभूत शरीर को **मा विजिह्वरः**=तू कुटिल मत होने दे। यदि यहाँ कुटिल वृत्तियाँ पनप उठीं तो सोम का रक्षण सम्भव न रहेगा। सोम के रक्षण से ही तो यह शरीर **देवानाम्**=देवों का होता है, **उत**=और यह शरीर **सोम्यानाम्**=सौम्य—शान्त पुरुषों का होता है, अर्थात् सोम के सुरक्षित होने पर हम देववृत्तिवाले व सौम्य स्वभाव के होते हैं। यह चमस् देवों व सौम्य पुरुषों का **प्रियः**=अत्यन्त प्रिय होता है, कान्तिसम्पन्न होता है। २. **अयम्**=यह जो **चमसः**=सोमपात्र बना हुआ शरीर **देवपानः**=देवों के सोमपान का स्थान बनता है। (पिबन्ति अस्मिन् इति) **तस्मिन्**=उस शरीर में **देवाः**=देव लोग **अमृताः**=रोगरूप मृत्युओं से आक्रान्त न होते हुए तथा विषय वासनाओं के पीछे न मरते हुए **मादयन्ताम्**=हर्ष का अनुभव करें। इस सोमपात्रभूत शरीर में देव नीरोगता व निर्मलता के आनन्द का अनुभव करते हैं।

भावार्थ—कुटिलवृत्तियों से ऊपर उठकर हम शरीर में सोमरक्षण के द्वारा इस शरीर को देवों व सौम्य पुरुषों का प्रिय शरीर बनाएँ और नीरोग व निर्मलवृत्ति के बनकर आनन्द का अनुभव करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, इन्दुः**॥ छन्दः—**पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

शरीर का मुख्य लक्ष्य 'प्रभु-प्राप्ति'

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते।
तस्मिन्कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम्॥ ५४॥

१. **अथर्वा**=(अर्वाङ्) आत्मनिरीक्षण करनेवाला (अ-थर्व्) न डाँवाडोल वृत्तिवाला पुरुष **यम्**=जिस **पूर्णं चमसम्**=सुरक्षित सोम से पूर्ण चमस् (शरीर-पात्र) को **वाजिनीवते**=(वाजिनी food) सब भोजनों को देनेवाले **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली प्रभु की प्राप्ति के लिए **अबिभः**=धारण करता है, **तस्मिन्**=उस इन्द्र की प्राप्ति के लिए धारण किये गये शरीर में **सुकृतस्य भक्षं कृणोति**=पुण्य का भोजन करता है। इस शरीर को प्रभु-प्राप्ति का साधन समझता हुआ वह पाप में प्रवृत्त नहीं होता। वह प्रभु को ही सब शक्तियों का स्रोत जानकर प्रभु की ओर ही झुकता है। यह प्रभु-प्रवणता उसे पुण्य-प्रवृत्त बनाती है। २. **तस्मिन्**=उस पुण्य का भोजन किये जानेवाले शरीर में **इन्द्रः**=वह सर्वशक्तिमान्, सर्वैश्वर्यशाली प्रभु **विश्वदानीम्**=सदा **पवते**=पवित्रता करनेवाले होते हैं। यह अथर्वा प्रभु को 'वाजिनीवान्' प्रशस्त अन्नोंवाले के रूप में जानता है। प्रभु से दिये गये 'व्रीहिमत्तं यवमत्तं माषमत्तमथो तिलम्' व्रीहि, यव, माष, तिल आदि भोजनों को ही करनेवाला बनता है। इन सात्त्विक भोजनों का सेवन उसे सात्त्विक वृत्तिवाला बनाता है।

भावार्थ—आत्मनिरीक्षण करनेवाला व स्थिर वृत्तिवाला मनुष्य शरीर को प्रभु-प्राप्ति का साधन समझता है। इसी उद्देश्य से वह शरीर में सोम का रक्षण करता है। इस शरीर में वह पवित्र भोजनों को करता हुआ पवित्रवृत्तिवाला बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अग्नि व सोम द्वारा विष-प्रतीकार

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश॥ ५५॥

१. यहाँ—नगरों में रहते हुए हम अनुभव करते हैं कि कुत्ते के काटने से कितने ही व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार वानप्रस्थ में, जहाँ कि मकानों का स्थान कुटिया ले-लेती है और पलंगों का स्थान भूमि, वहाँ कृमि-कीट के दंश की अधिक सम्भावना हो सकती है, अतः कहते हैं कि **यत्**=जब **कृष्णाः शकुनः**=यह काला पक्षी—कौआ अथवा द्रोणकान्द (काकोल) **ते**=तुझे **आतुतोद**=पीड़ित करता है, **पिपीलः**=कीड़ा-मकौड़ा तुझे काट खाता है, **सर्पः**=साँप डस लेता है, **उत वा**=अथवा **श्वापदः**=कोई हिंस्र पशु तुझे घायल कर देता है, **तत्**=तो **विश्वात् अग्निः**=सब विष आदि को भस्म कर देनेवाली अग्नि **अगदं कृणोतु**=तुझे नीरोग करनेवाली हो। सर्पादिक के दंश के होने पर उस विषाक्त स्थल को अग्नि के प्रयोग से जलाकर विषप्रभाव को समाप्त किया जाता है। विद्युत्चिकित्सा में यही प्रक्रिया काम करती है। २. यह अग्निप्रयोग तभी सफल होता है, यदि शरीर में रोग से संघर्ष करनेवाली वर्चःशक्ति (Vitality) ठीक रूप में हो। इस वर्चस्शक्ति के न होने पर बाह्य उपचार असफल ही रहते हैं, इसलिए मन्त्र में कहते हैं कि **सोमः च**=यह सोम—वीर्यशक्ति भी तुझे नीरोग करे। वह सोम **यः**=जो **ब्राह्मणान् आविवेश**=ज्ञानी पुरुषों में प्रवेश करता है। ज्ञानी लोग सोम के महत्त्व को समझकर उसे सुरक्षित रखने के लिए पूर्ण प्रयत्न करते हैं। सोम ही वस्तुतः रोगों व विकारों को दूर करता है—औषधोपचार तो उसके सहायकमात्र होते हैं।

भावार्थ—पक्षी, कृमि, कीट, सर्प व हिंस्र पशुओं से उत्पन्न किये गये विकारों को अग्नि प्रयोग से तथा शरीर में सोम के रक्षण से हम दूर करनेवाले हों। सोम के शरीर में सुरक्षित होने पर ही औषधोपचार उपयोगी होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः, आपः**॥ छन्दः—**आर्ष्यनुष्टुप्**॥

सात्त्विक भोजन व सोमरक्षण

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः।
अपां पयसो यत्पयस्तेन मा सह शुम्भतु॥ ५६॥

१. **ओषधयः**=ओषधियाँ—सब वानस्पतिक भोजन **पयस्वतीः**=आप्यायन करनेवाली हैं। सौम्य वानस्पतिक भोजनों से ही शरीर में सोम का रक्षण सम्भव होता है। सुरक्षित सोम सब अंग-प्रत्यंगों के आप्यायन का साधन बनता है। इन ओषधियों के सेवन से **मामकं पयः पयस्वत्**=मेरा आप्यायन भी आप्यायनवाला हो, मेरी वृद्धि सदा ही होती रहे। अथवा (पयः= food) मेरा ओषधि-भोजन वस्तुतः आप्यायनवाला हो। २. **अपाम्**=(आपः रेतो भूत्वा) शरीरस्थ रेतःकणों को **पयसः**=आप्यायन का **यत्**=जो **पयः**=आप्यायन है, अर्थात् रेतःकणों की वृद्धि की जो वृद्धि है—खूब ही रेतःकणों का वर्धन है, **तेन सह**=उस रेतःकणों की वृद्धि के साथ **मा शुम्भतु**=प्रभु मेरे जीवन को अलंकृत करें।

भावार्थ—मैं शरीर का आप्यायन करनेवाली ओषधियों का ही सेवन करूँ। मेरा आप्यायन भी आप्यायनवाला हो—मेरी वृद्धि अधिकाधिक होती चले। रेतःकणों के रक्षण से मेरा जीवन अलंकृत हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

घरों में स्त्री का सर्वप्रमुख स्थान

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥ ५७॥

१. गृह को उत्तम बनाने का सर्वाधिक उत्तरदायित्व स्त्री का है, अतः उसका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि **इमाः नारीः**=ये गृह की उन्नति का कारणभूत (नृ नये) स्त्रियाँ **अविधवाः**=अविधवा हों। दीर्घजीवी पतियों को प्राप्त करके ये सदा अपने सौभाग्य को स्थिर रखनेवाली हों। साथ ही **सुपत्नीः**=(शोभनः पतिः यस्याः) उत्तम पतियोंवाली हों। जहाँ ये स्वयं पातिव्रत्य धर्म का पालन करनेवाली हों, वहाँ इनके पति भी एकपत्नीव्रत का सुन्दरता से निर्वहण करनेवाले हों। ये पत्नियाँ **आञ्जनेन**=शरीर को सर्वतः अलंकृत करनेवाले **सर्पिषा**=घृत के साथ **स्पृशन्ताम्**=सम्यक् स्पर्शवाली हों। इनके घरों में उस गोघृत की कमी न हो जो शरीर, मन व मस्तिष्क सभी को दीप्त बनानेवाला है। २. **अनश्रवः**=ये अश्रुवाली न हों—इन्हें दरिद्रता व कटुता आदि के कारण कभी रोना न पड़े। **अनमीवाः**=व्यवस्थित व संयत जीवन के कारण ये सदा नीरोग हों। **सुरत्नाः**=उत्तम रमणीय पदार्थोंवाली व उत्तम आभूषणोंवाली हों। ये **जनयः**=उत्तम सन्तानों को जन्म देनेवाली गृहस्त्रियाँ **योनिम् अग्रे आरोहन्तु**=घर में सर्वमुख्य स्थान में स्थित हों। घर में इनका उचित आदर हो।

भावार्थ—घरों में स्त्रियों का स्थान प्रमुख हो। इन्हें घर के निर्माण के लिए आवश्यक सब वस्तुएँ सुलभ हों। इनका अपना शरीर पूर्ण स्वस्थ हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥

आदर्श पति

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्यो॑मन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा॑ सुवर्चाः॥ ५८॥

१. **पितृभिः संगच्छस्व**=पालनात्मक कर्मों में लगे हुए पुरुषों के साथ तू संगति करनेवाला हो। इनके संग में तू भी निर्माणात्मक कार्यों की प्रवृत्तिवाला बन। **यमेन सं (गच्छस्व)**=संयमी पुरुषों के साथ तेरा मेल हो। उनके सम्पर्क में तू भी संयमी बन। **परमे व्योमन्**=इस उत्कृष्ट हृदयान्तरिक्ष में तू **इष्टापूर्तेन**=इष्ट व आपूर्त की भावना से युक्त हो। तेरी प्रवृत्ति यज्ञात्मक कर्मों की हो तथा तू वापी, कूप, तड़ाग आदि लोकहित की वस्तुओं के निर्माण की वृत्तिवाला हो। २. **अवद्यं हित्वा**=सब अशुभ कर्मों को छोड़कर पुनः **अस्तम् एहि**=फिर अपने वास्तविक गृह—ब्रह्मलोक—की ओर आनेवाला बन। यहाँ—संसार में **सुवर्चाः**=उत्तम वर्चस्—प्राणशक्तिवाला होता हुआ **तन्वा संगच्छताम्**=विस्तृत शक्तिओंवाले शरीर से संगत हो। इस शरीर को स्वस्थ रखता हुआ तू मोक्षमार्ग की ओर बढ़।

भावार्थ—हमारा सम्पर्क संयमी व निर्माणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगों के साथ हो। हमारे हृदयों में यज्ञादि उत्तम कर्म करने का संकल्प हो। अशुभ से दूर होकर हम ब्रह्मलोक की ओर चलें। यात्रा की पूर्ति के लिए स्वस्थ शरीरवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वराट् असुनीतिः पिता

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम्।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्व१ः कल्पयाति ॥ ५९ ॥

१. **ये**=जो **नः**=हमारे **पितुः पितरः**=पिता के भी पिता हैं, ये **पितामहाः**=जो हमारे पितामह हैं अथवा जो हमारे पिता के पितामह, अर्थात् हमारे प्रपितामह हैं, **ये**=जो गृहस्थ से ऊपर उठकर **उरु अन्तरिक्षम्**=विशाल अन्तरिक्ष में—वसुधारूप विस्तृत परिवार में **आविविशुः**=प्रविष्ट हुए हैं, २. **तेभ्यः**=उन पितरों से शिक्षित होकर **नः**=हमारे पिता भी **अद्य**=आज **स्वराट्**=आत्मशासन करनेवाले तथा **असुनीतिः**=प्राणों का ठीक प्रणयन करनेवाले—प्राणायाम द्वारा प्राणसाधना सम्पन्न—बने हैं। ये हमारे पिता **यथावशम्**=अपनी इच्छा के अनुसार **तन्वः**=हमारे शरीरों को **कल्पयाति**=निर्मित करते हैं। पिता जैसा संकल्प करते हैं, वैसे ही उनके सन्तान होते हैं।

भावार्थ—हम अपने पितरों से उत्तम शिक्षा प्राप्त करके आत्मशासन की वृत्तिवाले व प्राण-साधना सम्पन्न बनें। ऐसा होने पर हम संकल्प के अनुसार उत्तम सन्तानों को जन्म दे सकेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

मण्डूकपर्णी

शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम्।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति।
मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ॥ ६० ॥

१. हे पुरुष! **ते**=तेरे लिए **नीहारः शं भवतु**=कोहरा शान्ति देनेवाला हो। **प्रुष्वा**=जल-बिन्दुओं के फुहार भी **ते**=तेरे लिए **शं**=शान्तिकर होकर **अवशीयताम्**=भूमि पर गिरें। हे **शीतिके**=शीतवीर्य ओषधे! **शीतिकावति**=तू शीतवीर्यवाली होती हुई शरीर से उत्तेजना को दूर करके शान्ति को जन्म देती है। हे **ह्लादिकावति**=शरीर में उत्तम धातुओं को जन्म देकर अह्लाद को बढ़ानेवाली **ह्लादिके**=ह्लादिका नामवाली ओषधे! तू **मण्डूकी**=मण्डूकी है—शरीर को उत्तम धातुओं से मण्डित करनेवाली है। २. तू **अप्सु**=रेतःकणों के निमित्त **शं भुवः**=शान्ति को पैदा करनेवाली हो। सब प्रकार की उत्तेजना को समाप्त करके तू रेतःकणों के रक्षण का साधन बन। **इमम् अग्निं सुशमय**=तू इस कामाग्नि को शान्त करनेवाली हो। कामाग्नि की शान्ति के द्वारा ही तू रेतःकणों में उबाल को समाप्त करेगी और इसप्रकार रेतःकणों का रक्षण करने में सहायक बनेगी। सुरक्षित रेतःकण शरीर को 'स्वास्थ्य-नैर्मल्य व ज्ञानदीप्ति' से अलंकृत करेंगे।

भावार्थ—हमारे लिए नीहार व जलबिन्दुप्रपात शान्तिकर हों। 'मण्डूकी' नामक ओषधि उत्तेजना को दूर करके हमें शान्त बनाए। उत्तम धातुओं को जन्म देकर हमें आनन्दयुक्त करे। हमें रेतःकणों के रक्षण के द्वारा 'स्वास्थ्य, नैर्मल्य व ज्ञानदीप्ति' से मण्डित करनेवाली यह 'मण्डूकी' इस अन्वर्थ नामवाली हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'गोमत् अश्ववत्' पुष्टम्

विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ६१ ॥

१. **विवस्वान्**=ज्ञान की किरणोंवाले सूर्यसम ज्योतिरूप ब्रह्म **नः**=हमारे लिए **अभयं कृणोतु**=मरणजनितभीतिराहित्य को करे। वह विवस्वान्, **यः**=जोकि **सुत्रामा**=सम्यक् रक्षण करनेवाला है—हमें वासनाओं से आक्रान्त नहीं होने देता। इसप्रकार जो **जीरदानुः**=हमारे जीवन का कर्त्ता है और **सुदानुः**=सब उत्तमताओं को प्राप्त करनेवाला है। हम प्रभु की उपासना करनेवाले बनें। प्रभु हमारे कवच होंगे और हमें न तो मृत्यु का भय होगा न वासनाओं के आक्रमण का। २. **इह**=यहाँ—हमारे घर में **इमे**=ये **वीराः**=वीर सन्तान **बहवः भवन्तु**=(बृहि वृद्धौ-बृंहते) वृद्धिशील हों—हमारे सन्तान वीर व वृद्धिशील हों और **मयि**=मुझमें **गोमत्**=प्रशस्त ज्ञानेन्द्रियोंवाला, **अश्ववत्**=प्रशस्त कर्मेन्द्रियोंवाला **पुष्टम्**=अंग-प्रत्यंग का पोषण **अस्तु**=हो। मेरे सब अंग सुपुष्ट हों और मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मन्द्रियाँ प्रशस्त हों।

भावार्थ—प्रभु का उपासन हमें निर्भय बनाए। प्रभु हमारे रक्षक हों। हमारे सन्तान वृद्धिशील व वीर हों। हमारे अंग-प्रत्यंग पुष्ट हों, हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ प्रशस्त हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अमृतत्व

विवस्वान्नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु।
इमान्रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वे षामसवो यमं गुः॥ ६२॥

१.**विवस्वान्**=ज्ञान की किरणोंवाले प्रभु ज्ञान देकर **नः**=हमें **अमृतत्वे दधातु**=अमृतत्व में स्थापित करें—हमें दीर्घ प्रशस्त जीवनवाला बनाएँ। अज्ञान ही हमें पापों व वासनाओं की ओर ले-जाता है। ज्ञानाग्नि में ये पाप व वासनाएँ दग्ध हो जाती हैं। **मृत्युः परा ऐतु**=मृत्यु हमसे दूर हो और **नः**=हमें **अमृतम्**=अमृतत्व **आ ऐतु**=सर्वथा प्राप्त हो। २. विवस्वान् प्रभु **आजरिम्णः**=जरावस्थापर्यन्त **इमान् पुरुषान् रक्षतु**=हमारे इन पुरुषों का रक्षण करें। **एषाम् असवः**=इनके प्राण **यमं मा सु गुः**=मृत्यु के देवता को नहीं प्राप्त हों, अर्थात् असमय में इनका जीवन न समाप्त हो जाए।

भावार्थ—विवस्वान् प्रभु हमें अमृतत्व में स्थापित करें। जरावस्थापर्यन्त प्रभु हमारा रक्षण करें। असमय में ही हमारे प्राण न चले जाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'मतीनां प्रमतिः' प्रभुः

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितॄणां कविः प्रमतिर्मतीनाम्।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात्॥ ६३॥

१. **यः**=जो **पितॄणां कविः**=पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त लोगों को उनके कर्त्तव्यों का उपदेश देनेवाले हैं (कौति, उ कु शब्दे) तथा **मतीनाम् प्रमतिः**=ज्ञानियों को प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं, वे प्रभु **न**=अब (न संप्रत्यर्थे) **मह्ना**=अपनी महिमा से **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्ष में **दध्रे**=सब लोक-लोकान्तरों का धारण कर रहे हैं। हे **विश्वामित्राः**=सब प्राणियों के प्रति स्नेहवाले लोगो! **तम्**=उस प्रभु को **हविर्भिः**=दानपूर्वक अदन से—यज्ञशेष के सेवन से **अर्चत**=पूजो। २. ऐसा करने पर **सः**=वे **यमः**=सर्वनियन्ता प्रभु **नः**=हमें **प्रतरं जीवसे**=प्रकृष्टतर जीवन के लिए **धात्**=धारण करें।

भावार्थ—प्रभु ही हमें कर्त्तव्यों का उपदेश देनेवाले हैं—सब ज्ञान के दाता हैं। वे अपनी महिमा से सब लोकों को अन्तरिक्ष में धारण कर रहे हैं। हम त्यागपूर्वक अदन करते हुए प्रभु

का अर्चन करें। वे नियन्ता प्रभु हमें दीर्घजीवन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्पथ्यापङ्क्तिः** ॥

उत्तम ज्योति को पाना

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ ६४॥

१. हे **ऋषयः**=वासनाओं को विनष्ट करनेवाले (ऋष् to kill) ज्ञानियो! **उत्तमां दिवम् आरोहत**=सर्वोत्कृष्ट प्रकाशमय लोक में आरोहण करो। पृथिवी से अन्तरिक्ष में तथा अन्तरिक्ष से द्युलोक में तुम्हारा आरोहण हो। **मा बिभीतन**=मत डरो—भयभीत न होओ। दैवी सम्पत्ति में 'अभय' का ही प्रथम स्थान है। ज्ञानाग्नि में पाप के भस्म हो जाने पर भय का तो प्रश्न ही नहीं रहता। २. आप **सोमपाः**=सोम का रक्षण करनेवाले हो। **सोमपायिनः**=औरों को भी सोमपान की प्रेरणा देनेवाले हों। हमसे भी हे सोमपायी ऋषियो! **वः**=आपकी **इदम्**=यह **हविः**=दानपूर्विका अदन क्रिया—यज्ञशेष के सेवन की वृत्ति **क्रियते**=की जाती है। हम भी आपकी भाँति हवि का सेवन करनेवाले बनते हैं और **उत्तमं ज्योतिः अगन्म**=सर्वोत्तम ज्योति परमात्मा को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम पृथिवी से अन्तरिक्ष में व अन्तरिक्षक से द्युलोक में ऊपर और ऊपर उठनेवाले हों, निर्भीक बनें। सोम का शरीर में रक्षण करें, औरों को भी इसी बात के लिए प्रेरित करें। 'हवि' का—दानपूर्वक अदन को स्वीकार करते हुए उत्तम ज्योति को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान-शक्ति-कर्म-उपासना

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध॥ ६५॥

१. **अग्निः**=प्रगतिशील जीव **बृहता**=वृद्धि के कारणभूत **केतुना**=ज्ञान से **प्रभाति**=प्रकर्षेण दीप्त होता है। खूब ही ज्ञान प्राप्त करता है। **रोदसी**=द्युलोक व पृथिवीलोक में—मस्तिष्क व शरीर में **वृषभः**=शक्तिशाली बना हुआ यह अग्नि **आरोरवीति**=नित्य प्रभु का स्तवन करनेवाला बनता है। मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त तथा शरीर को दृढ़ बनाकर प्रभु-स्तवन में प्रवृत्त होता है। २. **दिवः**=ज्ञान के प्रकाश के **अन्तात्**=परले सिरों को **चित्**=भी और **उपमान्**=समीप प्रदेशों को यह **उदानट्**=प्रकृष्टरूप में व्याप्त करता है। ज्ञान का परला सिरा आत्मविद्या है और समीप का सिरा प्रकृतिविद्या। यह इन दोनों को प्राप्त करने का खूब ही प्रयत्न करता है। यह **अपाम् उपस्थे**=रेतःकणों की उपस्थिति में—शरीर में रेतःकणों के रक्षण के द्वारा **महिषः**=प्रभु का पूजन करनेवाला **ववर्ध**=वृद्धि को प्राप्त होता है। '**अपाम् उपस्थे**' का भाव यह भी है कि कर्मों की गोद में, अर्थात् निरन्तर यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगा हुआ यह उपासक वृद्धि को प्राप्त करता है। वस्तुतः कर्मों में लगे रहने के द्वारा ही प्रभुपूजन होता है।

भावार्थ—हम अधिकाधिक ज्ञानप्राप्त करने के लिए यत्नशील हों। शरीर व मस्तिष्क को शक्ति व दीप्ति से सम्पन्न करके, प्रभु का स्तवन करनेवाले बनें। आत्मविद्या व प्रकृतिविद्या को व्याप्त करते हुए कर्त्तव्यकर्मों को करने के द्वारा प्रभुपूजन करते हुए वृद्धि को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु-दर्शन

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्॥ ६६॥

१. **नाके** (न अकम्) आनन्दमयस्वरूप में अथवा मोक्षधाम में **उपपतन्तम्**=समीपता से प्राप्त होते हुए **सुपर्णम्**=उत्तमता से पालन करनेवाले **त्वा**=आपको, हे प्रभो! **यत्**=जब **हृदा वेनन्तः**=हृदय से आपकी प्राप्ति की कामना करते हुए लोग **अभ्यचक्षत**=देखते हैं, तब वे अनुभव करते हैं कि **हिरण्यपक्षम्**=(पक्ष परिग्रहे) आप ज्ञान का परिग्रह करनेवाले हैं—ज्ञानस्वरूप हैं। **वरुणस्य दूतम्**=द्वेषनिवारण के दूत हैं, निर्द्वेषता का उपदेश देते हैं। **यमस्य योनौ शकुनम्**=संयत जीवनवाले पुरुष के शरीरगृह में शक्ति का संचार करनेवाले हैं। **भुरण्युम्**=सबका भरण करनेवाले हैं।

भावार्थ—जीव को मोक्षधाम में प्रभु की समीपता प्राप्त होती है। जब जीव हृदय से प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामनावाला होता है तब प्रभु-दर्शन कर पाता है। वह देखता है कि प्रभु ज्ञानस्वरूप हैं, निर्द्वेषता का सन्देश दे रहे हैं, संयमी को शक्तिशाली बनाते हैं और सबका भरण करनेवाले हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पथ्याबृहती** ॥

जीवनशक्ति और ज्योति

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥ ६७॥

१. **इन्द्र**=हे सर्वशक्तिमन् प्रभो! **नः**=हमारे लिए **क्रतुम्**=शक्ति व प्रज्ञान को इसप्रकार **आभर**=प्राप्त कराइए, **यथा**=जैसे **पिता पुत्रेभ्यः**=पिता पुत्रों के लिए प्राप्त कराता है। इस शक्ति व प्रज्ञान से ही तो हम जीवन-यात्रा को पूर्ण कर सकेंगे। २. हे **पुरुहूत**=(पुरु हूतं यस्य) पालन व पूरण करनेवाली है पुकार जिसकी, ऐसे प्रभो! आप **अस्मिन् यामनि**=इस संसार-यात्रा के मार्ग में **जीवाः**=जीवनशक्ति से पूरिपूर्ण हुए-हुए हम **ज्योतिः अशीमहि**=ज्योति को प्राप्त करनेवाले हों।

भावार्थ—प्रभु हमें शक्ति व ज्ञान प्राप्त कराएँ। हम प्रभु का आराधन करते हुए जीवनशक्ति से परिपूर्ण हों और ज्योति को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्वधा, मधु, घृत

अपूपापिहितान्कुम्भान्यांस्ते देवा अधारयन्।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥ ६८॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जीवनीशक्ति व ज्योति को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हमारा भोजन उत्तम हो। भोजन ही शक्ति व तीव्र बुद्धि को प्राप्त कराने का साधन है, अतः भोजन के विषय में कहते हैं कि **अपूपापिहितान्**=(अपूपाः अपिहिता येषु) जिनमें अविशीर्ण सुगन्धित (पूयी विशरणे दुर्गन्धे च) भोज्य पदार्थ ढककर रखे जाते हैं। **यान् कुम्भान्**=जिन कुम्भों को **देवाः**=व्यवहारकुशल शिल्पियों ने **अधारयन्**=तेरे लिए धारण किया है। **ते**=तेरे लिए **ते**=वे सब कुम्भ **स्वधावन्तः**=आत्मधारणयोग्य अन्नोंवाले, **मधुमन्तः**=मधुवाले (शहद) **घृतश्चुतः**=और घृत स्रवण करनेवाले हों।

भावार्थ—हमारे भोजन-पान अपूपों से पूर्ण हों—उनमें ऐसे भोज्य-पदार्थ हों जो शीघ्र विशीर्ण व दुर्गन्धित नहीं हो जाते। शरीर के धारण के योग्य अन्नों से वे परिपूर्ण हों। उनमें शहद हों, वे घृतपूर्ण हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

धान, तिल, स्वधा

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्॥ ६९॥

१. **याः**=जिन **धानाः**=धान्यों को, **तिलमिश्राः**=तिलों से मिलाकर **स्वधावतीः**=पौष्टिक अन्न से युक्त करके **अनुकिरामि**=क्षेत्रों में क्रमशः विकीर्ण करता हूँ—खेतों में बीज के रूप में बोता हूँ, **ताः**=वे धान **ते**=तेरे लिए **विभ्वीः**=खूब अधिक **प्रभ्वीः**=उत्कृष्ट बल को पैदा करनेवाले **सन्तु**=हों (विभुत्वगुणोपेताः)। २. **यमः राजा**=सर्वनियन्ता शासक प्रभु **ताः**=उन धानों को **ते**=तेरे लिए **अनुमन्यताम्**=खाने के लिए अनुमति दे। वस्तुतः प्रभु ने हमारे लिए तिल—पौष्टिक अन्न व धानों को ही भोजन के रूप में ग्रहण करने की आज्ञा दी है। 'व्रीहिमत्तं यवमत्तं माषमत्तमथो तिलं एष वां भागो निहितः'।

भावार्थ—हम खेतों में तिल, धान व पौष्टिक अन्नों को ही पैदा करने का यत्न करें। ये हमारे लिए पर्याप्त व शक्ति देनेवाले हों। प्रभु ने हमारे लिए ये ही भोजन नियत किये हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मुक्तात्मा का ज्ञानोपदेश के लिए समय-समय पर आना

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन्॥ ७०॥

१. हे **वनस्पते**=प्रकाश की किरणों के स्वमिन् प्रभो! **यः एषः**=जो यह मुक्त जीव **त्वयि निहितः**=शरीर को छोड़कर आपमें निहित हुआ है, इसे **पुनः देहिः**=फिर हमारे लिए प्राप्त कराइए। २. **यथा**=जिससे **यमस्य सादने**=उस सर्वनियन्ता आपके आश्रय में रहता हुआ **विदथा वदन्**=हमारे लिए ज्ञानों का उपदेश करता हुआ **आसातै**=आसीन हो।

भावार्थ—मुक्तात्मा इस संसार में पुनः आएँ और प्रभु के आश्रय में निवास करते हुए वे हमारे लिए ज्ञानोपदेश करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

तपस्याग्निदग्ध को पुण्यशील लोकसमाज का अंग बनाना

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके॥ ७१॥

१. हे **जातवेदः**=ज्ञानिन्—गतमन्त्र के अनुसार मुक्ति से लौटे हुए पुरुष! **आरभस्व**=तू संसार में अपने कार्य का आरम्भ कर। **ते**=तेरी **हरः**=अविद्यान्धकार को नष्ट करने की शक्ति **तेजस्वत् अस्तु**=तेजवाली हो, अर्थात् तू ज्ञान-प्रसार के कार्य में खूब समर्थ हो। २. **अस्य**=इस प्रजानन के **शरीरम्**=शरीर को **संदह**=सम्यक् दग्ध कर—तपस्या की अग्नि में परिपक्व कर और **अथ**= अब **एनम्**=इसको **उ**=निश्चय से **सुकृताम्**=पुण्यशील लोगों के **लोके**=लोक में **धेहि**=स्थापित कर। इन्हें राष्ट्र के उत्तम वर्ग का अंग बना।

भावार्थ—राष्ट्र में ज्ञानप्रसार में प्रवृत्त आचार्यों का कर्त्तव्य है कि अपने शिष्यों को तीव्र तपस्वी बनाकर—उनमें ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करके, उन्हें राष्ट्र का उत्तम अंग बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

घृतस्य कुल्या

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यै ∫तु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥

१. **ये**=जो **ते**=वे **पूर्वे**=पहले पितर, अर्थात् प्रपितामह और पितामह, **ये च**=और जो **अपरे पितरः**=अपर पितर, अर्थात् तेरे पिता **परागताः**=गृहस्थ से ऊपर उठकर दूर वन में चले गये हैं, **तेभ्यः**=उनसे **घृतस्य**=ज्ञानजल की प्रवाहिणी **कुल्या**=नदी **एतु**=हमें प्राप्त हों। यह घृतकुल्या **शतधारा**=सैकड़ों प्रकार से हमारा धारण करनेवाली हो और **व्युन्दती**=हमारे हृदयों को भक्तिरस से आर्द्र करती हुई हो।

भावार्थ—हमें 'प्रपितामह, पितामह व पिता' रूप पितरों से वह ज्ञान प्राप्त हो जोकि सैकड़ों प्रकार से हमारा धारण करे और हमें भक्तिरस से आप्लवित करनेवाला हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञाननदी में जीवन का शोधन व उत्थान

एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितृणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥ ७३ ॥

१. हे जीव! गतमन्त्र के अनुसार पितरों से प्रवाहित होनेवाली ज्ञाननदी (सरस्वती) में **एतत् वयः**=अपने इस जीवन को **उन्मृजानः**=शुद्ध करता हुआ **आरोह**=उन्नति की दिशा में आरोहण कर—ऊपर उठ। तेरे **स्वाः**=अपने पितर (बन्धु-बान्धव) **इह**=यहाँ **उ**=निश्चय से **बृहदु**=खूब ही **दीदयन्ते**=ज्ञान से दीप्त हो रहे हैं। २. तू भी समय आने पर **मध्यतः**=इस गृहस्थ जीवन के मध्य से **अभिप्रेहि**=वानप्रस्थ की ओर चल। **पितृणां लोकं मा अपहास्थाः**=पितरों के लोक को दूर से मत छोड़। तू भी पितरों के लोक में आनेवाला बन। **यः**=जो पितृलोक **अत्र**=यहाँ जीवन में **प्रथमः**=सर्वप्रथम लोक है—मुख्य है, अथवा विस्तारवाला है (प्रथ विस्तारे)। इसमें गृहस्थ के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठकर एक व्यक्ति विशाल अन्तरिक्ष में प्रवेश करता है।

भावार्थ—पितरों से प्रवाहित होनेवाले ज्ञाननदी में अपने जीवन को शुद्ध करते हुए हम भी ऊपर उठें। वह भी समय आये जब हम भी गृहस्थ से ऊपर उठकर वनस्थ हों। इस पितृलोक को हम उपेक्षित न करें। यह लोक हमें विशाल अन्तरिक्ष में ले-जाता है।

अथ चतुर्थोऽनुवाकः

[४] चतुर्थं सूक्तम्

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

वेदवाणी द्वारा प्रभु के प्रकाश को प्राप्त करना

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके ॥ १ ॥

१. **जातवेदसः**=उस सर्वव्यापक (जाते जाते विद्यते), सर्वज्ञ (जातं जातं वेत्ति) प्रभु की **जनित्रीम्**=प्रादुर्भाव करनेवाली वेदवाणी का **आरोहत**=आरोहण करो (सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति०

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः०)। वेदवाणी के अध्ययन से हम प्रभु के प्रकाश को देखनेवाले बनें। प्रभु कहते हैं कि मैं **वः**=तुम्हें **पितृयाणैः**=पितृयाण मार्गों से **सं आरोहयामि**=सम्यक् आरूढ़ कराता हूँ। रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोग स्वाध्याय-प्रवृत्त होकर वेदवाणी का आरोहण करते हैं। ध्वंस के मार्ग की ओर प्रवृत्ति होते ही ज्ञानरुचिता समाप्त हो जाती है। २. पितृयाणमार्गों से चलता हुआ व्यक्ति **हव्यवाहः**=हव्य का वहन करनेवाला होता है—सदा यज्ञशील बनता है। यह **इषितः**=प्रभु से प्रेरणा प्राप्त किया हुआ व्यक्ति **हव्या अवाट्**=हव्य पदार्थों का वहन करनेवाला होता है। यज्ञिय पवित्र पदार्थों का ही सेवन करता है। हे **युक्ताः**=साम्यबुद्धि से युक्त पितरो! आप **ईजानम्**=इन यज्ञशील पुरुषों को **सुकृतां लोके धत्त**=पुण्यकर्मा लोगों के लोक में धारण करो, अर्थात् आपकी प्रेरणा से ये लोग यज्ञशील बनें और सदा पुण्यकर्मों में प्रवृत्त रहें।

भावार्थ—हम रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त हुए-हुए वेदवाणी के स्वाध्याय से प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करें। प्रभुप्रेरणा को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति यज्ञशील बनता है। यह सदा पुण्यकर्मा लोगों के लोक में निवास करनेवाला होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

देव यज्ञमय जीवनवाले होते हैं

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्॥ २॥

१. (ऋतवो वै देवाः गो० २.६.६) **ऋतवः देवाः**=नियमित गतिवाले (ऋ गतौ) अथवा दानपूर्वक अदन करनेवाले (हु दानादनयोः) देववृत्ति के व्यक्ति **यज्ञं कल्पयन्ति**=यज्ञ को सिद्ध करते हैं। **हविः**=चरु-आज्य व सोमलक्षण हवि को **पुरोडाशम्**=पिष्टिमय—मोहनभोग आदि हव्य विशेषों को **स्रुचः**=जुहू आदि यज्ञोपयुक्त चमसादि को, **यज्ञायुधानि**=यज्ञ के साधनभूत सब उपकरणों को ये सिद्ध करते हैं। २. हे साधक! तू **तेभिः**=उन **देवयानैः पथिभिः**=देवों से जाने योग्य मार्गों से **याहि**=गतिशील बन। **ईजानाः**=यज्ञशील लोग **स्वर्गं लोकं यन्ति**=स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं। इनके घर स्वर्गोपम बनते हैं।

भावार्थ—देव यज्ञमय जीवनवाले होते हुए घरों को स्वर्गमय बनाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाभुरिगतिजगती**॥

तृतीये नाके (अङ्गिरसः, सुकृतः, आदित्याः)

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति। तेभिर्याहि
पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व॥ ३॥

१. हे साधक! तू **ऋतस्य पन्थाम्**=ऋत के—यज्ञ के मार्ग को **साधु अनुपश्यः**=सम्यक् अनुक्रमेण देखनेवाला बन। **अङ्गिरसः**=अंग-प्रत्यंग में रसवाले—पूर्ण स्वस्थ व ज्ञानी **सुकृतः**=पुण्यशाली लोग **येन यन्ति**=जिस ऋत के मार्ग से जाते हैं। ज्ञानी पुण्यकर्मा लोग ऋत के मार्ग से ही चलते हैं—हमें भी इस ऋत (यज्ञ) के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। २. हे साधक! तू भी **तेभिः पथिभिः**=उन मार्गों से **स्वर्गं याहि**=सुखमय लोक को प्राप्त कर, **यत्र**=जिस लोक में **आदित्याः**=सदा गुणों का आदान करनेवाले लोग **मधु भक्षयन्ति**=मधुवत् प्रीतिकर सात्त्विक भोजनों को ही यज्ञशेष के रूप में खाते हैं। उस **तृतीये नाके**=तृतीय सुखमय लोक में **अधिविश्रयस्व**=तू आश्रय कर। प्राकृतिक भोगों के उपभोग का मार्ग 'पृथिवीलोक' है। राजस् प्रवृत्तिवाला 'धन और यश' की प्राप्ति का मार्ग 'अन्तरिक्षलोक' है। यज्ञशेष के रूप

में सात्त्विक भोजन का स्वीकार 'प्रभु-प्राप्ति' का मार्ग 'द्युलोक' है। यही 'तृतीय नाक' लोक हैं। तू इसमें विचरनेवाला बन।

भावार्थ—हम ऋत के मार्ग को देखें। इसी मार्ग से पुण्यशील लोग चलते हैं। इस मार्ग में गुणों का आदान करनेवाले आदित्य मधु का भक्षण करते हैं। यही तृतीय नाक लोक है। हमें इसी का आश्रय करना चाहिए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

त्रयः सुपर्णाः

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम्॥ ४॥

१. गतमन्त्र में वर्णित 'अङ्गिरसः, सुकृता, आदित्याः'=पूर्णस्वस्थ, उत्तम कर्मों को करनेवाले, गुणों व ज्ञान का आदान करनेवाले **त्रयः**=तीनों **सुपर्णाः**=उत्तमता से अपना पालन व पूरण करनेवाले हैं। ये **उपरस्य मायू**=(उपरमनोऽस्मिन् भूतानि, मायू=मायवः) सब प्राणियों के निवास-स्थानभूत प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाले हैं। ये **नाकस्य पृष्ठे**=आनन्दमय प्रभु के आधार में **विष्टपि अधिश्रिताः**=(त्रिविष्टप=विष्टप) स्वर्गलोक में आश्रय करते हैं, अर्थात् इनके घर स्वर्ग बन जाते हैं। २. **स्वर्गाःलोकाः**=ये स्वर्गतुल्य गृह **अमृतेन विष्ठाः**=अमृत से—नीरोगता से व्याप्त हैं (विष व्याप्तौ)। ये **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **इषम् ऊर्जम्**=अन्न और रस को—अथवा प्रभु-प्रेरणा (इष्) और बल (ऊर्ज्) को **दुह्राम्**=प्रपूरित करनेवाले हों।

भावार्थ—हम 'अङ्गिरस् (पूर्णस्वस्थ), सुकृत् (पुण्यकर्मा), आदित्या (गुणों व ज्ञानों का आदान करनेवाले)' बनकर प्रभु का उपासन करते हुए अपने घरों को स्वर्ग बनाएँ। ये घर नीरोगता के आधार हों। हमारे लिए अन्न-रस का दोहन करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

जुहूः, उपभृत, ध्रुवा

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम्॥ ५॥

१. यज्ञ के महत्त्व का काव्यमय वर्णन इस रूप में करते हैं कि **जुहूः द्याम् दाधार**=(हूयते अनया हविः सोमसाधनाभूतः पात्रविशेषः) जुहू नामक यज्ञपात्र द्युलोक का धारण करता है। **उपभृत् अन्तारिक्षम्**=(उप समीपे जुह्वाः भ्रियते) जुहू के समीप रखा जानेवाल पात्रविशेष अन्तरिक्ष को धारण करता है। **ध्रुवा प्रतिष्ठां पृथिवीं दाधार**=ध्रुवा संज्ञिका स्रुक् चराचरात्मक जगत् की आश्रयभूत प्रथित भूमि को धारण करती है। इसप्रकार ये यज्ञपात्र त्रिलोक का धारण करते हैं, अर्थात् सम्पूर्ण संसार का आधार यज्ञ ही है। २. **इमां प्रति**=ध्रुवा से धारित इस पृथिवी का लक्ष्य करके **लोकाः**=सब लोक **घृतपृष्ठाः**=दीप्ति के आधारभूत होते हैं, **स्वर्गाः**=स्वर्ग ही होते हैं। सब लोक इन प्राणियों की आधारभूत पृथिवी को दीप्तिमय व स्वर्गतुल्य बनाते हैं। जब इस पृथिवी पर सब मनुष्य यज्ञशील बनते हैं, तब इस पृथिवी पर सूर्य शान्तिशील होकर तपता है (शं नस्तपतु सूर्यः), अन्तरिक्ष से बादल भी ठीक वर्षा करके अन्नोत्पत्ति का साधन बनते हैं (शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः)। ये **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **कामंकामम्**=प्रत्येक काम्य—चाहने योग्य पदार्थ का **दुह्राम्**=दोहन करते हैं।

भावार्थ—'यज्ञ' त्रिलोकी का धारण करता है। यज्ञों के होने पर सब अन्तरिक्ष व द्युलोक

इस पृथिवी को दीप्तिमय स्वर्गतुल्य बनाते हैं। यज्ञशील पुरुष के लिए सब काम्य पदार्थों को प्राप्त कराते हैं 'एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्'।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अहृणीयमानः 'यजमान'

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः॥ ६॥

१. हे **ध्रुवे**=यज्ञपात्रविशेष! तू **विश्वभोजसम् पृथिवीम् आरोह**=सबका पालन करनेवाली इस पृथिवी पर आरोहण कर—इस पृथिवी की अधिष्ठात्री देवता बन। हे **उपभृत्**=जुहू के समीप स्थापित होनेवाले पात्रविशेष। तू **अन्तरिक्षम् आक्रमस्व**=अन्तरिक्षलोक में गतिवाली हो और **जुहू**=हे जुहु! तू **यजमानेन साकम्**=इस यज्ञशील पुरुष के साथ **द्यां गच्छ**=द्युलोक में जानेवाली हो, अर्थात् तू यजमान को प्रकाशमय लोक में प्राप्त करा। २. 'ध्रुवा, उपभृत् तथा जुहू' द्वारा यज्ञ करते हुए हे यजमान! तू **स्रुवेण वत्सेन**=इस वत्स के समान स्रुव नामक पात्र से **सर्वाः प्रपीनाः दिशः धुक्ष्वः**=सब आप्यायित हुई दिशाओं का दोहन कर। बछड़ा गोस्तनों को स्तन्यपान द्वारा प्रपीन करता है, इसी प्रकार 'स्रुव' जुहू आदि पात्रों को आज्यपूरित करता है, अतः यह स्रुव वत्स-तुल्य कहा गया है। स्रुव के द्वारा यजमान सब दिशाओं से काम्य पदार्थों का दोहन करनेवाला बनता है। हे यजमान! इसप्रकार यज्ञ से सब वस्तुओं का दोहन करता हुआ तू **अहृणीयमानः**=(अरोषणः) रोषरहित है—तू बिलकुल क्रोधशून्य है। सब काम्य पदार्थों की प्राप्ति तुझे अभिमान व क्रोध आदि से परिपूर्ण न कर दे।

भावार्थ—यज्ञ हमारे जीवन को स्वर्गमय बनाए। यज्ञशील पुरुष के लिए सब दिशाएँ इष्ट काम्य पदार्थों को प्राप्त कराएँ। सब इष्टों से परिपूर्ण होता हुआ भी यह यजमान अभिमान व क्रोध से शून्य होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

तीर्थैं तरन्ति प्रवतः मही (इति)

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त॥ ७॥

१. **तीर्थैः**=माता, पिता, आचार्य आदि तीर्थों के द्वारा **महीः**=महान् **प्रवतः**=(Precipice, deciving) ढलानों को **तरन्ति**=तैर जाते हैं, अर्थात् अज्ञानान्धकार से तरानेवाले 'माता, पिता, आचार्य' आदि तीर्थ हैं। इनके द्वारा दिये गये ज्ञानों के द्वारा हम जीवन-यात्रा में आ जानेवाली महान् ढलानों को—कठिन मार्गों को जीवन की उलझनों को तैर जाते हैं। **इति**=इसप्रकार अज्ञानान्धकारों को तैर कर ये उस मार्ग से **यन्ति**=चलते हैं, **येन**=जिससे कि **यज्ञकृतः सुकृतः**=यज्ञशील पुण्यकृत् लोग चला करते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम में अज्ञान को दूर करके गृहस्थ में यज्ञशील बनते हैं। २. इस **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **अत्र**=यहाँ—गृहस्थ जीवन में **दिशः**=सब दिशाएँ **लोकम् अदधुः**=प्रकाश को धारण करती हैं। **यत्**=जबकि ये यज्ञशील **भूतानि**=सब प्राणियों को **अकल्पयन्त**=सामर्थ्य-सम्पन्न करते हैं। यज्ञ की भावना मनुष्यों को परस्पर मेलवाला बनाती है। (यज्ञ संगतिकरणे)। यह मेल उनकी शक्ति को बढ़ाता है। इस शक्ति के होने पर उनके लिए सब ओर प्रकाश-ही-प्रकाश होता है। निर्बलता व असामर्थ्य ही

सब कष्टों का मूल बना करती है।

भावार्थ—हम 'माता, पिता, आचार्य' आदि तीर्थों से अज्ञान को तैर कर यज्ञशील बनें। इस यज्ञशीलता से हमारे लिए सब ओर प्रकाश-ही-प्रकाश होता है। इस यज्ञशीलता से हम मेलवाले बनकर शक्तिशाली बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाऽतिशक्वरी** ॥

अङ्गिरस्-आदित्य-दक्षिण

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ॥ ८ ॥

१. **अङ्गिरसाम्**=प्राणशक्तिसम्पन्न—अथवा प्राणों की आराधना करनेवाले ब्रह्मचारियों का **अयनम्**=शरण (रक्षक) **पूर्वः अग्निः**=यह आहवनीय अग्नि है। आहवनीय अग्नि 'आचार्य' है (गुरुराहवनीयस्तु)। यह विद्यार्थी का पूरण करने से 'पूर्व अग्नि' कहा गया है। यह विद्यार्थी को संयमी बनाकर प्राणशक्तिसम्पन्न बनाता है। **आदित्यानाम्**=अदीना देवमाता के पुत्रभूत इन गृहस्थों का **अयनम्**=शरण **गार्हपत्यः**=गार्हपत्य अग्नि है। गार्हपत्य अग्नि ठीक प्रज्वलित रहे, अर्थात् गृहस्थ का खान-पान ठीक से चलता जाए तो गृहस्थ में सबके मस्तिष्क ठीक से कार्य करते हैं। गार्हपत्य अग्नि 'पिता' कहलाता है। पिता के ठीक होने पर गृहस्थ में अन्य व्यक्ति भी ठीक बने रहते हैं। सन्तानों पर पिता का बड़ा स्वस्थ प्रभाव पड़ना आवश्यक है। अब गृहस्थ से ऊपर उठकर (दक्ष् to grow) वानप्रस्थ में पहुँचनेवाले **दक्षिणानाम्**=चतुर, कुशल पुरुषों का **अयनम्**=शरण **दक्षिणाग्निः**=दक्षिणाग्नि 'माता' है। एक वानप्रस्थ अब किन्हीं को भी पत्नीभाव से न देखकर सभी को मातृभाव से देखता है। २. संन्यस्त होकर तू **ब्रह्मणा विहितस्य**=वेद द्वारा प्रतिपादित **अग्नेः महिमानम्**=उस प्रभु की महिमा को (सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति) **समङ्गः**=सब अंगों से संगत हुआ-हुआ **सर्वः**=(whole) पूर्णस्वस्थ व **शग्मः**=सुख-दुःखरहित हुआ-हुआ **उपयाहि**=समीपता से प्राप्त हो। प्रभु की उपासना करता हुआ तू प्रभु की महिमा को प्राप्त करनेवाला हो।

भावार्थ—आचार्य हमें प्राणशक्तिसम्पन्न बनाएँ। गृहस्थ में पिता सबको उत्तम गुणों का आदान करनेवाला बनाए। वानप्रस्थ में हम सब नारियों में मातृभावनावाले हों और अन्ततः संन्यास में हम संहत अवयवोंवाले—स्वस्थ व सुखी होते हुए प्रभु की महिमा को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाभुरिक्शक्वरी** ॥

'पूर्व, गार्हपत्य व दक्षिण' अग्नियाँ

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात्तपतु गार्हपत्यः।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो
अन्तरिक्षाद्दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात्॥ ९ ॥

१. '**पूर्वः अग्निः**'=तेरा पूरण करनेवाला वह आचार्यरूप अग्नि **त्वा**=तुझे **शम्**=शान्तिकर होता हुआ **पुरस्तात् तपतु**=सबसे प्रथम दीप्त जीवनवाला बनाए। **पश्चात्**=इसके बाद **गार्हपत्यः**=पितारूप गार्हपत्य अग्नि **शम्**=शान्तिकर होता हुआ **तपतु**=तेरे जीवन को दीप्त करे। तेरे पिता तुझे अपनी प्रेरणा व उदाहरण से एक सद्गृहस्थ बनानेवाले हों। अब वानप्रस्थ में यह **दक्षिणाग्निः**=मातृरूप दक्षिणाग्नि—सबके अन्दर मातृभावना **तपतु**=तुझे दीप्त जीवनवाला बनाए। **शर्म**=यह मातृभावना तुझे सुखी करे। यह भावना **वर्म**=तेरा कवच बने। इस भावना के द्वारा तू चरित्रहीनता में जाने

से बचा रहे। २. हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **उत्तरतः**=उत्तर से, **मध्यतः**=मध्य से, **अन्तरिक्षात्**=अन्तरिक्षदेश से, **दिशः दिशः**=प्रत्येक दिशा से **घोरात् परि पाहि**=घोर, भयंकर पाप कर्मों से बचानेवाले होइए। आपका स्मरण व उपासन हमें अशुभ कर्मों में फँसने से बचाए।

भावार्थ—आचार्य, पिता व मातृभावना मुझे क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ व वानप्रस्थ में दीप्त जीवनवाला बनाएँ। यह मातृभावना मुझे सुखी करे और मेरा कवच बने—मुझे पतन से बचानेवाली हो। प्रभुस्मरण मुझे संन्यस्त दशा में सर्वतः घोर कर्मों से बचानेवाला हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शन्तमाभिः तनूभिः

यूयमग्ने शन्तमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम्।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति॥ १०॥

१. हे **अग्ने**=('पूर्व, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि' आचार्य, पिता, माता व प्रभु)-रूप अग्नियो! **यूयम्**=आप सब **शन्तमाभिः तनूभिः**=अपने अत्यन्त शान्तिकर रूपों से (ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विराट् च स्वराट्.....सम्राट् च अभिभूश्च......विभूश्च परिभूश्च......प्रभ्वी च प्रभूतिश्च 'ते मा विशताम्' तै० १.१७.३), अर्थात् 'ज्ञानदीप्ति, जितेन्द्रियता, सम्यग् दीप्ति, शत्रुपराजय, वैभव, व्यापकता, प्रभावशक्ति, उत्कृष्ट ऐश्वर्य' आदि से आप **ईजानम्**=इस यज्ञशील पुरुष को **स्वर्गं लोकम् अभिवहाथ**=स्वर्गलोक की ओर ले-चलते हो। २. हे अग्नियो! आप इस ईजानपुरुष के लिए **अश्वः भूत्वा**=अश्वों के समान होकर इसे स्वर्ग में ले-चलते हो, जोकि **पृष्टिवाहः**=एक घोड़ा आगे और दो घोड़े जिसमें उसके पीछे जुते हैं, ऐसे रथ के वहन करनेवाले हैं। यहाँ शरीरों में भी बुद्धिरूप घोड़े के पीछे ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रियरूप अश्व जुते हैं। आप इस ईजान को वहाँ ले-चलते हो **यत्र**=जहाँ कि ये ईजानपुरुष **देवैः**=ज्ञानियों के साथ **सधमादं मदन्ति**=साथ बैठने के स्थान में ज्ञानचर्चाओं को करते हुए आनन्दित होते हैं।

भावार्थ—आचार्य, पिता व मातारूप अग्नियाँ यज्ञशील पुरुष को स्वर्ग में प्राप्त कराते हैं। यहाँ यज्ञशील पुरुष देवों के साथ ज्ञानचर्चाओं में आनन्द का अनुभव करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

एकस्त्रेधा विहितः

शमग्ने पश्चात्तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात्तपैनम्।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके॥ ११॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! आप **एनम्**=इस गतमन्त्र के ईजान-(यज्ञशील)-पुरुष को **पश्चात्**=पश्चिम दिशा से **शं तप**=शान्तिपूर्वक दीप्त जीवनवाला बनाएँ। **उत्तरात् शम्**=उत्तर से इसे शान्ति के साथ दीप्त कीजिए। **अधरात् शं तप**=दक्षिण से भी शान्ति के साथ दीप्त बनाइए। २. हे **जातवेदः**=सर्वज्ञप्रभो! आप ही **एकः**=एक होते हुए **त्रेधा विहितः**=हमारे जीवनों में तीन प्रकार से स्थापित होते हो। आचार्य, पिता व माता के रूप में आप ही हमारे जीवनों में शान्ति व दीप्ति देते हो। आप **एनम्**=इस ईजान को **उ**=निश्चय से **सुकृताम् लोके**=पुण्यशील पुरुषों के लोकों में **धेहि**=स्थापित कीजिए।

भावार्थ—प्रभु हमें सब ओर से शान्त व दीप्त जीवनवाला बनाएँ। हमारे जीवनों में प्रभु ही 'आचार्य, पिता व माता' के रूप में स्थापित होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**महाबृहती** ॥

प्राजापत्य यज्ञ

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन्॥ १२॥

१. **समिद्धाः**=ज्ञान से दीप्त होते हुए **अग्नयः**=आचार्य, पिता व मातारूप अग्नियाँ **जातवेदसः**=उस सर्वज्ञ प्रभु के इस **मेध्यम्**=पवित्र **प्राजापत्यम्**=गृहस्थ में सन्तान निर्माणरूप यज्ञ को **शम् आरभन्ताम्**=शान्तिपूर्वक आरम्भ करें। वस्तुतः एक गृहस्थ में सन्तान प्रभु के ही होते हैं। उन सन्तानों का पालन प्रभु का ही उपासन है। २. सब अग्नियाँ **इह**=इस जीवन में **शृतं कृण्वन्तः**=अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व करते हुए **मा अवचिक्षिपन्**=अपने को प्रभु से दूर विषय-वासनाओं में मत फेंकनेवाले हों। स्वयं पवित्र जीवनवाले होते हुए ही तो ये इस प्राजापत्य यज्ञ को सम्यक् सिद्ध कर पाएँगे।

भावार्थ—'आचार्य, पिता व माता' स्वयं ज्ञानदीप्त बनकर प्राजापत्य यज्ञ को अत्युत्तमता से कर पाते हैं। अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व बनाकर ये विषयवासनाओं में लिप्त नहीं होते।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी** ॥

यज्ञ एति विततः कल्पमानः

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम्।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन्॥ १३॥

१. **स्वर्गं लोकम् अभि ईजानम्**=स्वर्गलोक का लक्ष्य करके यज्ञ करनेवाले इस पुरुष को वह **विततः**=सर्वत्र विस्तृत (सर्वव्यापक) **कल्पमान**=(क्लृपू सामर्थ्ये) सामर्थ्यसम्पन्न होता हुआ **यज्ञः**=पूजनीय प्रभु **एति**=प्राप्त होता है। प्रभु की आज्ञा को मानता हुआ जो भी पुरुष यज्ञात्मक कर्मों में प्रवृत्त होता है उसे प्रभु अवश्य प्राप्त होते हैं। २. **जातवेदसः**=उस सर्वज्ञ प्रभु के **तम्**=उस **सर्वहुतं**=जिसमें सब 'तन-मन-धन' का अर्पण करना पड़ता है, **प्राजापत्यम्**=प्रजाओं के रक्षणात्मक **मेध्यम्**=पवित्र यज्ञ को **अग्नयः**=आचार्य, पिता व मातारूप अग्नियाँ **जुषन्ताम्**=प्रीतिपूर्वक सेवन करें। ये अग्नियाँ **शृतं कृण्वन्तः**=अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व करते हुए **इह**=इस जीवन में **मा अवचिक्षिपन्**=अपने को प्रभु से दूर विषयवासनाओं में मत फेंक डालें। स्वयं पवित्र जीवनवाले होते हुए ही ये इस प्राजापत्य यज्ञ को उत्तमता से कर पाएँगे।

भावार्थ—प्रभु की आज्ञा के अनुसार यज्ञ करने पर हमें प्रभु की प्राप्ति होती है। हम प्रभु के आदेश के अनुसार ही प्राजापत्य यज्ञ करनेवाले हों। ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करके हम विषयवासनाओं से दूर रहें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

देवयान

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद्दिवमुत्पतिष्यन्।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः॥ १४॥

१. **ईजानः**=यज्ञशील पुरुष **चितम्**=ज्ञानस्वरूप **अग्निम्**=अग्रणी प्रभु को **आरुक्षत्**=आरूढ़ होता है—प्रभु को प्राप्त करता है। यह **नाकस्य पृष्ठात्**=स्वर्गलोक के पृष्ठ से **दिवम् उत्पतिष्यन्**=

प्रकाशमय प्रभु को प्राप्त करनेवाला होता है। जब तक यज्ञों में सकामता रहती है, तब तक यह स्वर्ग को प्राप्त करता है। निष्कामता आते ही ये उसे स्वर्ग से भी ऊपर उठाकर प्रभु के समीप ले-जाते हैं। २. **तस्मै**=उस यज्ञशील पुरुष के लिए **नभसः**=आकाश से वह **ज्योतिष्मान् प्रभाति**=ज्योतिर्मय प्रभु प्रकाशित होते हैं—उसे आकाश के तारों में भी प्रभु का प्रकाश दिखता है। **सुकृते**=इस पुण्यशील पुरुष के लिए **स्वर्गः पन्थाः देवयानः**=वह (स्वर् ग) प्रकाशमय मार्ग होता है जोकि देवों का मार्ग है। देव प्रकाशमय मार्ग से गति करते हैं और अन्ततः प्रभु को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हम सकाम यज्ञों से स्वर्ग को प्राप्त करके उन्हें निष्कामता से करते हुए प्रभु को प्राप्त करनेवाले हों। यही देवयान मार्ग है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना'

अ॒ग्निर्होता॑ध्व॒र्युष्टे॒ बृह॒स्पति॒रिन्द्रो॑ ब्र॒ह्मा द॑क्षिण॒तस्ते॑ अस्तु।
हु॒तोऽयं संस्थि॑तो य॒ज्ञ ए॑ति॒ यत्र॒ पूर्व॒मय॑नं हु॒ताना॑म्॥ १५॥

१. हे यज्ञशील पुरुष! **अग्निः होता**=तेरे यज्ञ का होता वह अग्रणी प्रभु ही है। **बृहस्पतिः**=ब्रह्मणस्पति—ज्ञानियों का भी ज्ञानी प्रभु **ते अध्वर्युः**=तेरे यज्ञ का संचालक है। **इन्द्रः**=परमैश्वर्यवान्—सर्वशक्तिमान् प्रभु ही **ब्रह्मा**=तेरे यज्ञ के ब्रह्मा हैं। **ते दक्षिणतः अस्तु**=इन्हें तू दक्षिणभाग में स्थित कर। आदर के लिए दक्षिणभाग में बिठाना होता है। तू प्रभु का आदर व पूजन करनेवाला हो। २. इसप्रकार प्रभु के आधार में **हुतः अयम्**=आहुत हुआ-हुआ यह **यज्ञः संस्थितः**=ठीक रूप में समाप्त हुआ-हुआ तुझे वहाँ (गमयति) प्राप्त कराता है, **यत्र**=जहाँ कि **हुतानां पूर्वम् अयनम्**=यज्ञशील पुरुषों का (हुतं अस्य अस्ति इति हुतः) मुख्य शरणस्थान है। 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना'—ब्रह्म को ही यज्ञ का कर्त्ता मानता हुआ पुरुष ब्रह्म को प्राप्त करता ही है।

भावार्थ—एक यज्ञशील पुरुष अपने यज्ञ को ब्रह्म से ही 'अग्नि (होता), बृहस्पति (अध्वर्यु) व इन्द्र (ब्रह्म)' के रूप में होता हुआ अनुभव करता है। इसप्रकार इसका यज्ञ ठीक से समाप्त होता है और यह ब्रह्म को ही प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिपदाभुरिङ्महाबृहती**॥

यज्ञशिष्ट उत्तम भोजन

अ॒पू॒पवा॑न्क्षी॒रवां॑श्च॒रुरेह सी॑दतु।
लो॒क॒कृतः॑ प॒थि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ १६॥
अ॒पू॒पवा॑न्द॒धि॒वां॑श्च॒रुरेह सी॑दतु।
लो॒क॒कृतः॑ प॒थि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ १७॥
अ॒पू॒पवा॑न्द्र॒प्सवां॑श्च॒रुरेह सी॑दतु।
लो॒क॒कृतः॑ प॒थि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ १८॥
अ॒पू॒पवा॑न्घृ॒तवां॑श्च॒रुरेह सी॑दतु।
लो॒क॒कृतः॑ प॒थि॒कृतो॑ यजामहे॒ ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॥ १९॥

अपूपवान्मांसवांश्चरुरेह सीदतु।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ २०॥
अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ २१॥
अपूपवान्मधुमांश्चरुरेह सीदतु।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ २२॥
अपूपवान्रसवांश्चरुरेह सीदतु।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ २३॥
अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ॥ २४॥

१. यज्ञों को करनेवाला पुरुष सदा यज्ञशिष्ट उत्तम भोजन ही करता है। वह प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि **इह**=यहाँ—हमारे घरों में **चरुः**=चरणीय—भक्षणीय-भोजन **आसीदतु**=हमें प्राप्त हो। यह भोजन **अपूपवान्**=(न पूयते न विशीर्यते) दुर्गन्धित रोटी से युक्त न हो तथा **क्षीरवान्**=दूध से युक्त हो, इसी प्रकार यह भोजन **दधिवान्**=दहीवाला हो। **द्रपस्वान्**=(diluted curd) छाछ आदिवाला हो। **घृतवान्-मांसवान्** (fleshy part of fruits)=घृत से तथा फलों के गूदे से युक्त हो। **अन्नवान्-मधुमान्**=अन्नवाला हो तथा शहदवाला हो। **रसवान्-अपवान्**=रस से युक्त हो तथा जलोंवाला हो। ये ही हमारे भोज्यद्रव्य हों। २. इन उत्तम सात्त्विक भोजनों को करते हुए हम उन सत्पुरुषों के **यजामहे**=संग को प्राप्त हों जो **लोककृतः**=प्रकाश फैलानेवाले हैं—ज्ञानमार्ग को दिखलानेवाले हैं। **पथिकृतः**=कर्त्तव्यपथ का प्रतिपादन करते हैं और **ये**=जो **इह**=यहाँ—जीवन में **देवानां हुतभागाः स्थ**=देवों के हुत का सेवन करनेवाले हैं, अर्थात् यज्ञशील हैं और यज्ञशेष का ही सेवन करनेवाले हैं।

भावार्थ—हमारा भोजन सात्त्विक हो और संग ज्ञानी, यज्ञशील पुरुषों के साथ हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

स्वधा-मधु-घृत-धान-तिल

अपूपापिहितान्कुम्भान्यांस्ते देवा अधारयन्।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥ २५॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्॥ २६॥

व्याख्या १८.३.६८-६९ पर द्रष्टव्य है। २६ वें मन्त्र में 'विभ्वी' के स्थान में 'उद्भ्वी' पाठ है। इसका अर्थ भी वही है। 'खूब अधिक पैदा होनेवाले'

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**याजुषीगायत्री**॥

अक्षिति

अक्षितिं भूयसीम्॥ २७॥

१. हे साधक! तू प्रभु के अनुग्रह से **भूयसीम्**=बहुत अधिक **अक्षितिम्**=न नष्ट होने देनेवाली अन्न-सम्पत्ति को प्राप्त कर।

भावार्थ—हमारे घरों में उन उत्तम अन्नों की कमी न हो जो हमारी नीरोगता व निर्मलता के साधक बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सात्त्विक अन्न से उत्पन्न 'सोम' का शरीर में स्थापन

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥ २८॥

१. गतमन्त्रों में वर्णित सात्त्विक अन्न से उत्पन्न हुआ-हुआ **द्रप्सः**=रेत:कण (Drops of semen) **पृथिवीम् द्याम् अनु**=इस शरीररूप पृथिवी व मस्तिष्करूप द्युलोक को लक्ष्य करके **चस्कन्द**=शरीर में ही ऊर्ध्व (ascend) गतिवाला होता है। **च**=और **इमं योनिम्**=इस शरीररूप घर को **यः च पूर्वः**=और जो सर्वप्रथम स्थान में होनेवाला मस्तिष्करूप द्युलोक है, उसको **अनु**=लक्ष्य करके यह 'द्रप्स' शरीर में व्याप्त होता है। २. **समानम्**=(सम् आन) उत्तम प्राण-शक्तियुक्त **योनिम् अनु**=शरीररूप गृह का लक्ष्य करके **संचरन्तम्**=सम्यक् गति करते हुए **द्रप्सम्**=इस रेत:कण को **सप्त होत्राः अनु जुहोमि**=मैं शरीर-यज्ञ की साधक 'कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्' इन सात (दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें, एक मुख) होतृरूप इन्द्रियों का लक्ष्य करके शरीररूप यज्ञकुण्ड में आहुत करता हूँ। इस द्रप्स ने ही इन होताओं के शरीर-यज्ञ को सिद्ध कर सकने में समर्थ करना है।

भावार्थ—शरीर में ही व्याप्त किया गया सोम (द्रप्स) शरीर को, मस्तिष्क को व इन्द्रियों को सशक्त व दीप्त बनाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

प्रभु-पूजन व त्याग

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम्।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम्॥ २९॥

१. **ते नृचक्षसः**=वे मनुष्यों का ध्यान करनेवाले—उनका रक्षण करनेवाले (सर्वभूताहिते रताः) पुरुष उस प्रभु को ही **रयिम् अभिचक्षते**=ऐश्वर्य के रूप में देखते हैं, जो प्रभु **शतधारम्**=शतवर्षपर्यन्त हमारा धारण करनेवाले हैं। **वायुम्**=गति द्वारा सब बुराइयों का खण्डन करनेवाले हैं। **अर्कम्**=पूजनीय हैं व सूर्यसम दीप्त हैं। **स्वर्विदम्**=सुख व प्रकाश को प्राप्त करनेवाले हैं। २. **ये**=जो प्रभु के पुजारी **पृणन्ति**=(पृणाति protect) रक्षण का कार्य करते हैं, **च**=और सर्वदा **प्रयच्छन्ति**=सदा दान देनेवाले होते हैं, **ते**=वे **दक्षिणाम्**=दिये हुए दान को **सप्तमातरम् दुह्रते**=सात गुणा मपे हुए को दोहते हैं। दिया हुआ दान उन्हें सप्तगुणित होकर पुनः प्राप्त होता है।

भावार्थ—हम भूतहित में प्रवृत्त हुए-हुए प्रभु का पूजन करनेवाले बनें—प्रभु को ही अपना ऐश्वर्य समझें। धनों का दान देनेवाले बनें। रक्षणात्मक कर्मों में इनका विनियोग करें। ये दान दिये हुए धन सप्तगुणित होकर पुनः हमें प्राप्त होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

इडा धेनु का दोहन

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्॥ ३०॥

१. वेदवाणी एक गौ है, जो हमारे लिए ज्ञानरूप दुग्ध का प्रपूरण करती है। इस **इडां धेनुम्**=वेदवाणीरूप गौ को जोकि **मधुमतीम्**=हमारे जीवनों को अतिशयेन मधुर बनानेवाली है, इसे **स्वस्तये**=कल्याण के लिए **दुहन्ति**=दोहते हैं। यह वेदवाणीरूप धेनु **कोशम्**=ज्ञान का कोश है। **कलशम्**=(कला शेरतेऽस्मिन्) सब कलाओं का निवासस्थान है तथा **चतुर्बिलम्**=यह वेदवाणी कलश 'ऋग्, यजुः, साम, अथर्व' रूप चार बिलोंवाला है। वेदरूप इन चारों स्तनों से ज्ञानदुग्ध का प्रस्रवण होता है। २. इस **जनेषु**=लोगों में **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति का संचार करनेवाली, **मदन्तीम्** (मादयनीम्)=जीवन को आनन्दमय बनानेवाली, **अदितिम्**=(अ-दिति) शरीर के स्वास्थ्य को नष्ट न होने देनेवाली वेदवाणीरूप गौ को, हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **परमे व्योमन्**=उत्कृष्ट हृदयाकाश में **मा हिंसीः**=मत हिंसित कर। हृदय में तू इसे स्थान दे। इससे नित्यप्रति ज्ञानदुग्ध का दोहन करनेवाला बन।

भावार्थ—हमारे हृदयों में सदा वेदवाणी के लिए स्थान हो। हम सदा इसका स्वाध्याय करनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वस्त्रों का उद्देश्य 'शरीरभरण'

एतत्ते॑ दे॒वः स॑वि॒ता वासो॑ ददाति॒ भर्त॑वे।
तत्त्वं य॒मस्य॒ राज्ये॒ वसा॑नस्ता॒र्प्यं॑ चर॥ ३१॥

१. **सविता देवः**=वह सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, प्रकाशमय (दिव्) प्रभु **ते**=तेरे लिए **एतत् वासः**=इस वस्त्र को **भर्तवे**=भरण-पोषण के लिए **ददाति**=देते हैं। वस्त्र का उद्देश्य शरीर का रक्षण है। यों ही चमक-दमक व सौन्दर्य के लिए इनका धारण नहीं करना होता। २. **तत्**=उस **तार्प्यम्**='तृपा' नामक तृणविशेष से बने हुए अथवा प्रीतिजनक **वसानः**=वस्त्र को धारण करता हुआ **त्वम्**=तू **यमस्य राज्ये**=उस सर्वनियन्ता प्रभु के इस संसार-राज्य में **चर**=विचरनेवाला बन।

भावार्थ—वस्त्रों का उद्देश्य 'शरीर का धारण' ही है। इस संसार में इसी उद्देश्य से वस्त्रों को धारण करते हुए विचरें। तड़क-भड़क के लिए वस्त्रों का धारण न हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

धाना और तिल

धा॒ना धे॒नुर॑भवद्व॒त्सो अ॑स्या॒स्तिलो॑ऽभवत्।
तां वै य॒मस्य॒ राज्ये॒ अक्षि॑ता॒मुप॑ जीवति॥ ३२॥

१. गतमन्त्र में वस्त्रों के लिए सामान्य नियम का संकेत किया था। यहाँ भोजन का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि **धानाः**=भृष्टयव (भुने जौ) तुम्हारे लिए **धेनुः अभवत्**=धेनु—पालन करनेवाली गौ हों। **तिलः**=तिल **अस्याः वत्सा अभवत्**=इस धेनु के बछड़े के स्थानापन्न हों। २. **ताम्**=उस नानारूप गौ का **वै**=निश्चय से **अक्षिताम्**=जो नष्ट नहीं होने देनेवाली, उसका **यमस्य राज्ये**=उस सर्वनियन्ता प्रभु के राज्य में **उपजीवति**=यह साधक उपभोग करता है। इस साधक के भोजन 'धान तथा तिल' आदि सात्त्विक पदार्थ ही होते हैं।

भावार्थ—हम भोजन के लिए 'धान व तिल' आदि सात्त्विक पदार्थों का ही ग्रहण करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती** ॥

गौवों का उपस्थान

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र॥ ३३ ॥

१. हे **असौ**=अमुक पुरुष! **एताः**=ये **ते धेनवः**=तेरी गौवें **कामदुघाः भवन्तु**=यथेष्ट दुग्ध देनेवाली हों। २. ये **एनीः**=शुभ्रारुणवर्णवाली, **श्येनीः**=धवलवर्णवाली, **सरूपाः**=समानरूपवाली **विरूपाः**=विविधरूपोंवाली **तिलवत्साः**=तिल के समान स्नेहयुक्त बछड़ोंवाली—स्निग्ध बछड़ोंवाली गौवें **अत्र**=यहाँ—इस जीवन में **त्वा उपतिष्ठन्तु**=तुझे समीपता से प्राप्त हों।

भावार्थ—हमारे लिए गौवें यथेष्ठ दुग्ध देनेवाली हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'ऊर्ज् की दोग्ध्री' गौवें

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः॥ ३४ ॥

१. **एनीः**=शुभ्रवरुण (उषा के वर्ण के समान वर्णवाली) **धेनवः**=गौवें **ते**=तेरे लिए **धानाः**=भरण-पोषण करनेवाली हों। **हरिणीः**=हरित या नीले से वर्णवाली, **श्येनी**=श्वेतवर्णवाली, **कृष्णाः**=कृष्ण वर्णवाली और **रोहिणीः**=लाल (कपिल) वर्णवाली गौवें **अस्य**=इस यज्ञशील पुरुष का **धानाः**=धारण करनेवाली हों। २. **तिलवत्साः**=स्निग्ध बछड़ोंवाली, **अनपस्फुरन्तीः**=(not refusing to be milked) अक्षीण व सरलता से दोहन होती हुई ये गौवें **विश्वाहा**=सदा **अस्मै**=इस साधक के लिए **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति का **दुहानाः**=प्रपूरण करती हुई **सन्तु**=हों।

भावार्थ—भिन्न-भिन्न वर्णोंवाली ये गौवें हमारा धारण करनेवाली हों। ये हमारे लिए 'ऊर्ज्' का दोहन करें—बल व प्राणशक्ति का प्रपूरण करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

यज्ञ='शतधार साहस्र उत्स'

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम्।
स बिभर्ति पितरं पितामहान्प्रपितामहान्बिभर्ति पिन्वमानः॥ ३५ ॥

१. मैं **वैश्वानरे**=घृत व हवि को सूक्ष्म कणों में विभक्त करके सर्वत्र फैलाने के द्वारा सबका हित करनेवाले इस अग्नि में **इदम्**=इस **हविः**=घृत व हविर्द्रव्य को **जुहोमि**=आहुत करता हूँ। यह हवि **साहस्रम्**=हज़ारों का हित करनेवाला **शतधारम्**=शतवर्षपर्यन्त हमारा धारण करनेवाला एक **उत्सम्**=स्रोत (चश्मा) ही है। यज्ञ एक धारणात्मक तत्त्वों के प्रवाहवाला स्रोत है। २. **सः**=वह अग्नि **पिन्वमानः**=हविर्द्रव्यों से प्रीणित किया जाता हुआ हमारे **पितरम्**=पिताओं को भी **बिभर्ति**=धारण करता है, **पितामहान्**=पितामहों का तथा **प्रपितामहान्**=प्रपिताओं का भी **बिभर्ति**=पोषण करता है। यह हमारे बड़ों के भी स्वास्थ्य का साधन बनता है।

भावार्थ—मैं यज्ञाग्नि में घृत आदि हविर्द्रव्यों की आहुति देता हूँ। यज्ञाग्नि में डाली गई यह हवि हज़ारों प्रकार से शतवर्षपर्यन्त हमारा धारण करनेवाली है। ये हमारे 'पिता, पितामह व प्रपितामह' आदि को भी धारण करनेवाली होती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'ऊर्क् का दोग्धा' यज्ञ

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ॥ ३६ ॥

१. **सहस्रधारम्**=हज़ारों प्रकार से हमारा धारण करनेवाले, **शतधारं**=शतवर्षपर्यन्त हमारे जीवन का धारण करनेवाले **उत्सम्**=यज्ञरूप स्रोत को **पितरः**=पालनात्मक कर्मों की वृत्तिवाले लोग **स्वधाभिः**=धारण करनेवाले अन्नों के उद्देश्य से **उपासते**=उपासित करते हैं। यज्ञों से वृष्टि होकर उत्तम आद्य अन्नों की प्राप्ति होती है। २. यह यज्ञरूप स्रोत **अक्षितैः**=न क्षीण होनेवाला है। **सलिलस्य पृष्ठे व्यच्यमानम्**=अन्तरिक्ष के पृष्ठ पर विस्तृत होनेवाला है। यह सारे वायुमण्डल में हविर्द्रव्यों के सूक्ष्मकणों को फैला देनेवाला है। **ऊर्जं दुहानम्**=अन्न व रस का हमारे लिए प्रपूरण करनेवाला है। **अनपस्फुरन्तम्**=सम्यक् शोभमान है। (सम्यक् शोभमानम् सा०)

भावार्थ—यज्ञ शतशः प्रकार से हमारा धारण करनेवाला है। पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त लोग आद्य अन्नों के हेतु से इस यज्ञ को अपनाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कसाम्बु

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत्सजाता अव पश्यतेत।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान्कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥

१. इस मन्त्र में ज्ञानजल को 'कसाम्बु' कहा गया है 'कस गतिशासनयोः'। यह ज्ञानजल हमारी सब गतियों का साधक बनता है और आचार्य से अनुशासन के द्वारा हमें प्राप्त होता है। **इदं कसाम्बु**=यह ज्ञानजल **चयनेन चितम्**=आचार्य के समीप रहकर चयन के द्वारा संचित किया गया है। एक विद्यार्थी आचार्य के समीप रहकर इस ज्ञान का चयन (उपार्जन) करता है। हे **सजाताः**=(समानकुले जाताः) समान आचार्यकुल में विकसित ज्ञानवाले छात्रो! **तत् अवपश्यत**=उस ज्ञान को तुम सम्यक् देखो और उसके अनुसार **इत**=गतिवाले होओ। २. **अयं मर्त्यः**=यह ज्ञान का चयन करनेवाला मनुष्य **अमृतत्वम् एति**=अमृतत्व को प्राप्त करता है—जन्म-मरण के चक्र से ऊपर उठकर मुक्त हो जाता है। **तस्मै**=उस ज्ञानी मनुष्य के लिए **गृहान् कृणुत**=उत्तम गृहों का निर्माण करो **यावत् सबन्धु**=जब तक उसे प्रभु के साथ समान बन्धुत्व प्राप्त होता है। यह सबन्धुत्व प्राप्त होने पर तो घरों की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

भावार्थ—हम आचार्यकुल में ज्ञानजल का चयन करें। इस ज्ञानजल के द्वारा ही मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त करता है। जब तक हम प्रभु के बन्धु नहीं हो जाते, तब तक हमें इस लोक में निवास के लिए उत्तम घरों का निर्माण करना आवश्यक है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रसादमय जीवन (Living in the present)

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः।
इहैधि वीर्य ॑ वत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥

१. हे मनुष्य! तू **इह एव एधि**=यहाँ ही हो—सदा परलोक का ही चिन्तन न करते हुए इस लोक को उत्तम बनाने का प्रयत्न कर। **धनसनिः**=धनों का संभजन करनेवाला बन। जीवन-

यात्रा इस धन के बिना सफलता से सम्पन्न नहीं हो सकती। **इह चित्तः**=तू यहाँ ही चित्तवाला हो—भूत, भविष्यत् का स्मरण न करते रहकर, वर्तमान काल में चलनेवाला बन। **इह क्रतुः**=यहाँ ही संकल्पवाला तू बन। इस लोक को उत्तम बनाने के संकल्प व पुरुषार्थवाला तू हो। २. **इह**=यहाँ **वीर्यवत्तरः एधि**=खूब ही शक्तिशाली तू हो। **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन को धारण करनेवाला बन और **अपराहतः**=कभी भी काम-क्रोध आदि से तू आहत न हो।

भावार्थ—हम भूत व भविष्यत् में न रहकर वर्तमान में रहनेवाले बनें। वर्तमान को सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें। शक्तिशाली हों—दीर्घजीवनवाले हों और वासनाओं से पराभूत न हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पुरोविराडास्तारपङ्क्तिः**॥

सन्तान पालन व वृद्धपूजन

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु॥ ३९॥

१. **पुत्रं पौत्रम् अभितर्पयन्तीः**=पुत्रों व पौत्रों को प्रीणित करती हुई—उनके लिए सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त कराने के द्वारा उन्हें सदा प्रसन्न रखती हुई **इमाः आपः**=ये प्रजाएँ **मधुमतीः**=अतिशयेन मधुर जीवनवाली होती हैं। सन्तानों के उत्तम होने पर माता-पिता का जीवन तो आनन्दमय होता ही है। २. **पितृभ्यः**=अपने बड़े माता-पिता के लिए **स्वधाम्**=अन्नों को व **अमृतम्**=नीरोगता को **दुहानाः**=प्रपूरित करती हुई **देवीः आपः**=प्रकाशमय जीवनवाली—स्वाध्यायशील प्रजाएँ **उभयान्**=एक ओर पुत्र-पौत्रों को तथा दूसरी ओर माता-पिता आदि बड़ों को **तर्पयन्तु**=प्रीणित करनेवाली हों।

भावार्थ—युवा गृहस्थों का कर्तव्य है कि वे सन्तानों का समुचित पालन व शिक्षण करें तथा बड़ों की भोजनादि की व्यवस्था को ठीक रखते हुए उन्हें नीरोग बनाएँ। यही जीवन को मधुर व प्रकाशमय बनाने का मार्ग है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

आचार्यकुल में भेजना

आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम्।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान्॥ ४०॥

१. हे **आपः**=प्रजाओ! (गृहस्थियो!) आप **अग्निम्**=अपने इस प्रगतिशील सन्तान को **पितॄन् उप**=पितरों के समीप—वनस्थ पितरों के कुलों में **प्रहिणुत**=भेजो। उनके समीप इनका समुचित शिक्षण हो पाएगा। **मे**=मेरे **इमं यज्ञम्**=इस यज्ञ को **पितरः जुषन्ताम्**=पितर प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाले हों, पितरों के अनुग्रह से मेरा जीवन-यज्ञ ठीक प्रकार से चलता जाए। मैं समय-समय पर उनसे उचित प्रेरणा प्राप्त करता हुआ मार्ग पर बढ़ता चलूँ। २. **आसीनाम्**=शरीर में उपविष्ट—शरीर का स्थिर अंग बनी हुई **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्तियों को **ये**=जो **उपसचन्ते**=अपने में समवेत करते हैं, **ते**=वे पितर **नः**=हमारे लिए **सर्ववीरम्**=सब वीरों से युक्त **रयिम्**=ऐश्वर्य को **नियच्छान्**=प्राप्त कराएँ। पितरों के क्रियात्मक उपदेशों व प्रेरणा से हम सब वीर व ऐश्वर्यसम्पन्न बनें।

भावार्थ—हम अपने सन्तानों को पितरों के समीप उनके कुलों में पहुँचाएँ। यहाँ उनका समुचित शिक्षण हो। हमारे जीवन-यज्ञ में भी पितरों के आने-जाने से उत्तम प्रेरणा प्राप्त होती

रहे। स्थिर शक्तिवाले पितर हमारे सामने आदर्श के रूप में आते हैं; वे हमें वीरता व ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु-समिन्धन

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम्।
स वेद निहितान्निधीन्पितॄन्परावतो गतान्॥ ४१॥

१. आचार्यकुलों में उचित शिक्षण प्राप्त करनेवाले लोग उस प्रभु को अपने हृदयदेश में **समिन्धते**=समिद्ध करते हैं—उस प्रभु के प्रकाश को हृदय में देखनेवाले बनते हैं जो **अमर्त्यम्**=अविनाशी है, **हव्यवाहम्**=सब हव्य (प्रार्थनीय) पदार्थों को प्राप्त करानेवाले हैं तथा **घृतप्रियम्**=(घृतेन प्रीणाति) ज्ञानदीप्ति के द्वारा प्रीणित करनेवाले हैं। २. **सः**=वे प्रभु ही तो **निहितान् निधीन्**='अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा' आदि ऋषियों के हृदयों में स्थापित किये गये वेदरूप ज्ञानकोशों को **वेद**=हमारे लिए प्राप्त कराते हैं तथा **परावतः**=विषयों से ऊपर उठकर सुदूर देशों में **गतान्**=प्राप्त **पितॄन्**=पितरों को भी वे प्रभु ही हमारे लिए प्राप्त कराते हैं। प्रभुकृपा से ही हमें इन उच्च जीवनवाले पितरों का सम्पर्क प्राप्त होता है।

भावार्थ—हम हृदयदेश में प्रभु के प्रकाश को देखने का प्रयत्न करें। प्रभु ही अग्नि आदि ऋषियों के हृदयों में वेदज्ञान को स्थापित करते हैं तथा प्रभुकृपा से ही हमें उच्च जीवनवाले पितरों का संग प्राप्त होता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

मन्थ, ओदन, मांस

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥ ४२॥

१. गतमन्त्र के अनुसार जीवन को उत्तम बनाने के लिए भोजन में सात्त्विकता आवश्यक है, अतः प्रभु कहते हैं कि हे जीव! **ते**=तेरे लिए **यम्**=जिस **मन्थम्**=दधि मन्थन से उत्पन्न मठा आदि पदार्थ को **यम्**=जिस **ओदनम्**=भात को व **यत्**=जिस **मांसम्**=(fleshy part of fruits) फल के गूदे को **ते**=तेरे लिए **निपृणामि**=देता हूँ—सुरक्षित करता हूँ, **ते**=वे मन्थ, ओदन व मांसरूप पदार्थ **ते**=तेरे लिए **स्वधावन्तः**=आत्मधारण शक्तिवाले हों—तेरे शरीर का धारण करनेवाले हों। **मधुमन्तः**=तेरे जीवन को मधुर बनानेवाले हों तथा **घृतश्चुतः**=ज्ञानदीप्ति को प्राप्त करानेवाले हों।

भावार्थ—हम 'मठा, भात व फल के गूदे' आदि सात्त्विक भोजनों को करते हुए शरीर का धारण करनेवाले, हृदयों में माधुर्य से पूर्ण तथा मस्तिष्क में दीप्त ज्ञानवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्बृहती**॥

धान तथा तिल

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्॥ ४३॥

१. व्याख्या देखिए १८.४.२६ पर तथा १८.३.६९ पर

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'पुरोगवाः अभिशाचः' पितरः

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम्॥ ४४॥

१. **इदम्**=यह **पूर्वम्**=पहला **नियानम्**=जाने का मार्ग है, अर्थात् प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम है तथा **अपरम्**=उसके बाद दूसरा गृहस्थ का मार्ग है, **येना**=जिससे **ते**=वे **पूर्वे**=अपना ठीक प्रकार से पालन व पूरण करनेवाले **पितरः**=रक्षणात्मक कर्मों में प्रवृत्त लोग **परा-इताः**=पार को प्राप्त हो गये हैं। ब्रह्मचर्य व गृहस्थ को ठीक प्रकार से पूर्ण करके वे वनस्थ हुए हैं। २. **ये**=जो पितर **पुरोगवाः**=अग्रगतिवाले हैं और **अस्य अभिशाचः**=(शाच् व्यक्तायां वाचि) इस मार्ग के उत्तम उपदेश हैं, **ते**=वे **त्वा**=तुझे मार्ग के उपदेश के द्वारा **उ**=निश्चय से **सुकृतां लोकम्**=पुण्यशील लोगों के लोक को **वहन्ति**=प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—'ब्रह्मचर्याश्रम' जीवनयात्रा का पहला प्रयाण है, 'गृहस्थ' दूसरा। दोनों प्रयाणों को पार करके 'वानप्रस्थ' में प्रवेश करनेवाले पितर स्वयं अग्रगतिवाले होते हैं और हमें भी मार्ग का उपदेश देकर पुण्यकर्मा लोगों के लोक में प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सरस्वती का आराधन

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥ ४५॥
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे॥ ४६॥
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥ ४७॥

व्याख्या देखो १८.१.४१-४३

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः।
परापरैता वसुविद्वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु॥ ४८॥

१. **पृथिवीं त्वा**=घर की आधारभूत—अथवा घर का विस्तार करनेवाली तुझको **पृथिव्यामा**=इस पृथिवी पर **आवेशयामि**=सम्यक् गृह में प्रवेश कराता हूँ—बसाता हूँ। वह **धाता**=सबका धारण करनेवाला **देवः**=प्रकाशमय प्रभु **नः**=हम सबकी **आयुः प्रतिराति**=आयु को बढ़ाता है। इस घर में प्रभु हम सबको दीर्घजीवी बनाएँ। २. प्रभु कहते हैं कि **वः**=तुममें से **परापरैता**=(परा परा एत) खूब दूर-दूर जानेवाला—देश-देशान्तर को जानेवाला यह गृहपति **वसुवित्**=सब वसुओं (धनों) को प्राप्त होनेवाला **अस्तु**=हो। **अध**=अब **मृताः**=जिन्होंने अपनी वासनाओं को मार लिया है, वे **पितृषु संभवन्तु**=पितरों में होनेवाले हों—वानप्रस्थ होकर स्वयं सदा स्वाध्याय में लगे हुए दूसरों के लिए ज्ञान देनेवाले हों।

भावार्थ—एक पति घर में पत्नी को सम्यक् बसाये। दोनों मिलकर घर को उत्तम बनाएँ और दीर्घजीवी बनें। पति धनों का अर्जन करनेवाला हो। गृहस्थ के बाद वासनाओं को जीतकर, वनस्थ बनें और पितरों की कोटि में प्रविष्ट हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भात्रिष्टुप्**॥

प्रगतिशील पवित्र जीवन

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद्वामभिभा अत्रोचुः।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद्वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम॥ ४९॥

१. पति-पत्नी के लिए कहते हैं कि **आप्रच्यवेथाम्**=(च्यु गतौ) सब प्रकार से आगे बढ़नेवाले बनो। **तत्**=उसी हेतु से—आगे बढ़ने के दृष्टिकोण से **अपमृजेथाम्**=सब दोषों को दूर करके जीवन को शुद्ध कर डालो। उसी कर्म को करनेवाले बनो **यत्**=जिसको कि **वाम्**=आप दोनों के लिए **अभिभाः**=(to glitter, to shine) ज्ञानदीप्त प्रभु **ऊचुः**=कहते हैं। २. इन ज्ञानदीप्त पुरुषों के द्वारा उपदिष्ट **अस्मात्**=इस मार्ग से ही **एतम्**=तुम दोनों गतिवाले बनो। **अघ्न्यौ**=इस मार्ग से चलते हुए तुम वासनाओं से अहिंसनीय होओ। **तत् वशीयः**=यह ज्ञानदीप्त पुरुषों से उपदिष्ट मार्ग पर चलना ही इन्द्रियों को वश में करने का उत्कृष्ट साधन है। **पितृषु दातुः**=पितरों के विषय में आपको देनेवाले—पितरों के समीप प्राप्त करानेवाले **मम**=मेरे **इह अभोजनौ**=यहाँ पालनीय होओ। प्रभु कहते हैं कि मैं पितरों के समीप आपको प्राप्त कराता हूँ और इसप्रकार आपका पालन करता हूँ।

भावार्थ—पति-पत्नी धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ें। दोषों को दूर करें। ज्ञानदीप्त पुरुषों से इस विषय में ज्ञान प्राप्त करें। उनसे उपदिष्ट मार्ग पर ही चलें। वासनाओं से आहननीय हों। प्रभु इन्हें पितरों के सम्पर्क में लाने के द्वारा रक्षित करें। पितरों से उत्तम प्रेरणा लेते हुए ये पवित्र जीवनवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

दान व प्रभु-स्तवन (दक्षिणा + जरा)

एयमगन्दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान्॥ ५०॥

१. **इयम्**=यह **दक्षिणा**=दानवृत्ति **नः**=हमें **भद्रतः**=कल्याण की दृष्टि से **आ अगन्**=सर्वथा प्राप्त होती है। हम देने की वृत्तिवाले बनते हैं और यह वृत्ति हमारा कल्याण ही करती है। **अनेन**=इस व्यक्ति से **दत्ता**=दी हुई यह दक्षिणा **सुदुघा**=उत्तमता से हमारा प्रपूरण करनेवाली है, और **वयोधाः**=उत्कृष्ट जीवन का धारण करती है। गृहस्थ में दान की वृत्ति कल्याण-ही-कल्याण करती है। २. **यौवने**=यौवन में—युवावस्था में **जीवान् उपपृञ्चती**=जीवों को समीपता से प्राप्त होती हुई **जरा**=स्तुति—प्रभु-स्तवन की वृत्ति **इमान्**=इन जीवों को **पितृभ्यः उपसंपराणयात्**=पितरों को समीपता से प्राप्त कराती है। प्रभु-स्तवन की वृत्तिवालों को प्रभुकृपा से उत्तम पितरों का सम्पर्क प्राप्त होता है और ये उनसे ठीक मार्ग का ज्ञान प्राप्त करते हुए जीवन में भटकने से बचे रहते हैं।

भावार्थ—हम गृहस्थ में दानवृत्तिवाले बनें। यह हमारा प्रपूरण करेगी और उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त कराएगी। प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले बनें। प्रभु हमें उत्तम पितरों के सम्पर्क द्वारा ठीक मार्ग का ज्ञान प्राप्त कराके भटकने से बचाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

पितृभ्यः-देवेभ्यः

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन्प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्॥ ५१॥

१. **पितृभ्यः**='माता, पिता व आचार्य' आदि पितरों से—इनसे प्राप्त प्रेरणाओं के द्वारा **बर्हिः**=वासनाशून्य हृदय को **प्रभरामि**=प्रकर्षेण धारण करता हूँ। अपने हृदय को वासनाशून्य बनाता हूँ। ऐसा बनकर ही मैं पितरों को प्रीणित करनेवाला बनूँगा। **देवेभ्यः**=देववृत्ति के पुरुषों के सम्पर्क से **जीवं उत्तरम्**=अपने जीवन को उत्कृष्ट रूप में **स्तृणामि**=आच्छादित करता हूँ। इनका सम्पर्क मेरे जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। २. **तत्**=अतः हे पुरुष! तू **मेध्यः भवन्**=पवित्र जीवनवाला होता हुआ **आरोह**=आरोहण करनेवाला बन—उत्कृष्ट जीवनवाला हो। **पितरः**=माता, पिता, आचार्य आदि **त्वा**=तुझे **परेतम्**=विषयवासनाओं से दूर चला गया ही **प्रतिजानन्तु**=प्रतिदिन जानें। तू प्रतिदिन ऊपर और ऊपर उठता चल।

भावार्थ—पितरों से प्रेरणा प्राप्त कर हम अपने हृदयों को वासना से शून्य करें। देवों के सम्पर्क में जीवन को उत्कृष्ट बनाएँ। पवित्र होते हुए ऊपर और ऊपर उठें। देव हमें विषयों से दूर गया हुआ ही देखें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मेध्य

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्।
यथापरु तन्वं संभरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि॥ ५२॥

१. हे पुरुष! तू **इदं बर्हिः आ असदः**=इस वासनाशून्य हृदय में सर्वथा आसीन हो। हृदय को वासनाशून्य बना। इसप्रकार **मेध्यः अभूः**=पवित्र बन। **पितरः**=माता, पिता व आचार्य **त्वा**=तुझे **परेतम्**=विषयों से परे गया हुआ **प्रतिजानन्तु**=प्रतिदिन जानें। तू दिन-प्रतिदिन वासनाओं से दूर ही होता चल। २. विषयों से दूर होकर **यथापरु**=एक-एक पर्व का अतिक्रमण न करते हुए **तन्वं संभरस्व**=शरीर का भरण करनेवाला बन। संयम के कारण तेरे शरीर का एक-एक जोड़ बड़ा ठीक हो। प्रभु कहते हैं कि—**ते गात्राणि**=विषयों से दूर रहनेवाले तेरे अंग-प्रत्यंग को **ब्रह्मणा**=(ब्रह्म वेदः तपः तत्त्वम्) ज्ञान व तप के द्वारा **कल्पयामि**=शक्तिशाली बनाता हूँ। तेरे शरीर को मैं शक्ति व ज्ञान से सम्पन्न करता हूँ।

भावार्थ—हम हृदय को वासनाशून्य बनाएँ, पवित्र जीवनवाले हों। पितर हमारे जीवन से प्रीणित हों। हम शरीर के एक-एक पर्व का भरण करें। हमारे जीवन ज्ञान व तप के द्वारा शक्तिशाली बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पुरोविराट्सतःपङ्क्तिः** ॥

'पर्णः राजा' प्रभु

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन्।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद्दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥ ५३॥

१. **पर्णः**=वह सबका पालन करनेवाला प्रभु ही **राजा**=इस ब्रह्माण्ड का शासक है। वही

चरूणाम् अपिधानाम्=चरणशील—क्रियाशील प्रजाओं को अपनी गोद में धारण करनेवाला है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि' यही तो उसका हमारे लिए उपदेश है। इस प्रभु के द्वारा धारण किये जाने से **नः**=हमें **ऊर्जः**=प्राणशक्तियाँ, **बलम्**=बल, **सहः**=शत्रुमर्षणसामर्थ्य तथा **ओजः**=कान्ति (ओजस्विता) **आगन्**=प्राप्त होती है। २. ये प्रभु ही **जीवेभ्यः**=हम जीवों के लिए **शतशारदाय**=सौ वर्षों तक चलनेवाले **दीर्घायुत्वाय**=दीर्घ-जीवन के लिए **आयुः विदधत्**=आयुष्य का सम्पादन करते हैं। प्रभुस्मरण से—प्रभु की गोद में आसीन होने से हम दीर्घजीवी बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही हमारा पालन करनेवाला व शासक है। वे ही क्रियाशील पुरुषों का धारण करते हैं। प्रभुकृपा से हमें बल व प्राणशक्ति प्राप्त होती है—परिणामतः हम दीर्घजीवन को धारण करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'ऊर्जः भागः' प्रभु

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात्॥ ५४॥

१. **ऊर्जः**=सब बल व प्राणशक्तियों का **भागः**=संविभाग करनेवाला—प्राप्त करानेवाला **यः**=जो **इमं जजान**=इस ब्रह्माण्ड को जन्म देता है, वह **अश्मा**=(अश् व्याप्तौ) सर्वव्यापक है। **अन्नानामाधिपत्यं जगाम**=वही सब अन्नों के आधिपत्य को प्राप्त हुआ है—वही सब अन्नों का स्वामी है। २. हे जीवो! तुम **विश्वमित्राः**=सबके प्रति स्नेहवाले होते हुए **हविर्भिः**=त्यागपूर्वक अदन के द्वारा **तम् अर्चत**=उस प्रभु का पूजन करो। इसप्रकार 'सबके प्रति स्नेह व हवि द्वारा प्रभु-पूजन होने' पर **सः यमः**=वे सर्वनियन्ता प्रभु **नः**=हमें **प्रतरं जीवसे धात्**=ख़ूब ही दीर्घ जीवन के लिए धारण करें।

भावार्थ—प्रभु ही बल व प्राणशक्ति का धारण करनेवाले हैं, सब अन्नों के स्वामी हैं। प्रभु-पूजन का प्रकार यह है कि हम सबके प्रति स्नेहवाले होते हुए त्यागपूर्वक अदन करें। वे नियन्ता प्रभु हमें दीर्घजीवन प्राप्त कराएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभुस्मरण व विश्वबन्धुत्व की भावना

यथा यमाय हर्म्यमवपन्पञ्च मानवाः।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत॥ ५५॥

१. **यथा**=जिस प्रकार **पञ्च मानवाः**=पञ्च यज्ञयुक्त मनुष्य—'ब्रह्मयज्ञ-देवयज्ञ-पितृयज्ञ-अतिथियज्ञ व बलिवैश्वदेवयज्ञ'—पाँचों यज्ञों को करनेवाले व्यक्ति **हर्म्यम्**=इस शरीररूप गृह को **यमाय**=उस सर्वनियन्ता प्रभु के लिए **अवपन्**=उत्पन्न करते हैं (beget), इसे प्रभु के लिए एक पवित्र निवासस्थान के रूप में बनाते हैं। **एवा**=इसी प्रकार मैं भी **हर्म्यम्**=इस शरीररूप गृह को **वपामि**=उस प्रभु के लिए बनाता हूँ—'मेरे शरीर में प्रभु का निवास हो' इसके लिए यत्नशील होता हूँ। २. इस शरीर को प्रभु का निवासस्थान मैं इसलिए बनाता हूँ, **यथा**=जिससे **मे**=मेरे लिए **भूरयः असत**=बहुत हों, अर्थात् मेरा परिवार विशाल बने। मैं पृथिवीभर को अपना कुटुम्ब जानूँ। प्रभु का उपासक सभी को प्रभु का सन्तान जानकर सभी में बन्धुत्व की भावनावाला होता है।

भावार्थ—मैं पाँचों यज्ञों को करता हुआ अपनी इस देह को प्रभु का निवासस्थान बनाऊँ। यह प्रभु का निवास मुझे विश्वबन्धुत्व की भावनावाला बनाएगा।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**ककुम्मत्यनुष्टुप्**॥

ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ में

इदं हिरण्यं बिभृहि यत्ते पिताबिभः पुरा।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम्॥ ५६॥

१. **इदं हिरण्यम्**=इस ज्योति को **बिभृहि**=तू धारण करनेवाला बन, **यत्**=जिस ज्योति को **ते**=तेरे लिए **पिता**=ज्ञानदाता आचार्य ने **पुरः**=पालन व पूरण के दृष्टिकोण से **अबिभः**=धारण किया है। जीवन के प्रथमाश्रम में आचार्यों द्वारा दिये जानेवाले ज्ञान को धारण करना ही हमारा कर्त्तव्य है। आचार्य इस बात का पूरा ध्यान करते हैं कि वह ज्ञान जीवन के पालन व पूरण के लिए उपयोगी हो, वस्तुतः ज्ञान है ही वही। अनुपयोगी बातें 'ज्ञान' कहलाने के योग्य ही नहीं। २. ज्ञान प्राप्त करने के बाद, अब एक युवक गृहस्थ में आता है। उसके लिए कहते हैं कि तू **स्वर्गं यतः**=प्रकाशमय लोक, अर्थात् वानप्रस्थ में जाते हुए **पितुः**=पिता के **दक्षिणं हस्तं निर्मृड्ढि**=दाहिने हाथ को शुद्ध करनेवाला बन। उनके उत्तरदायित्वों को अपने हाथ में लेकर उन्हें अवशिष्ट गृहकृत्यों से मुक्त करनेवाला बन। वे गृहकृत्यों से निश्चिन्त होकर नित्य स्वाध्याययुक्त होते हुए अपने लोक को प्रकाशमय बना पाएँ। 'पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्यवनं गच्छेत्' इस मनु वाक्य के अनुसार सन्तान पिता को भारमुक्त कर देते हैं। वे निश्चिन्त होकर वनस्थ होते हैं, जहाँ वे निरन्तर स्वाध्याय द्वारा अपने जीवन को प्रकाशमय बना पाते हैं।

भावार्थ—हम ब्रह्मचार्याश्रम में आचार्यों से दिये जानेवाले हितरमणीय ज्ञान को प्राप्त करें। अब गृहस्थ में प्रवेश करते हुए हम अपने पिताओं के उत्तरदायित्व को अपने हाथ में लें, जिससे वे वनस्थ होकर निरन्तर स्वाध्याय में संलग्न हो सकें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'जीव-मृत-जात-यज्ञिय' पितर

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यै ऽतु मधुधारा व्युन्दती॥ ५७॥

१. **ये च**=और जो **जीवाः**=जीवनशक्ति से परिपूर्ण पितर हैं, **ये च मृताः**=जिनमें वासना का अंश पूर्णरूप से मृत हो गया है (मृतं वासनाविनाशः एषु अस्ति इति), **ये जाताः**=जिन्होंने अपने में शक्तियों का प्रादुर्भाव किया है, **ये च यज्ञियाः**=और जो यज्ञशील हैं, **तेभ्यः**=उन पितरों से **घृतस्य**=ज्ञानजल की (घृ दीप्तौ) **कुल्या**=सरित्—नदी **एतु**=हमें प्राप्त हो। इन पितरों से ज्ञान प्राप्त करते हुए हम भी 'जीवनशक्ति से परिपूर्ण, विनष्ट वासनाओंवाले, विकसित शक्तियोंवाले व यज्ञिय' बनें। २. वह घृतकुल्या हमारे लिए **मधुधारा**=मधु की धारा बने—हमारे जीवनों में माधुर्य को धारण करनेवाली हो तथा **व्युन्दतीः**=हमारे हृदयों को भक्तिरस से क्लिन्न करनेवाली हो। ज्ञान हमें मधुर व प्रभुभक्त बनाए।

भावार्थ—पितरों से ज्ञान प्राप्त करके हम मधुरवाणीवाले व भक्तिरस से क्लिन्न हृदयोंवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

वृषा मतीनाम्

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया॥ ५८॥

१. **विचक्षणः**=वह सर्वद्रष्टा **सूरः**=सबको कर्मों में प्रेरित करनेवाल 'सूर्यसम दीप्त ज्योतिवाला' ब्रह्म हमारी **मतीनां वृषा**=बुद्धियों को शक्ति से सिक्त करनेवाला है। यह प्रभु **पवते**=बुद्धि देकर हमारे जीवनों को पवित्र करते हैं। ये प्रभु हमारे **अह्नाम्**=दिनों के **उषसाम्**=उषाकालों के **दिवः**=ज्ञान के प्रकाश के **प्रतरीता**=बढ़ानेवाले हैं। हमें दीर्घजीवन और प्रकाशमय जीवन प्राप्त कराते हैं। २. ये प्रभु हमारे जीवनों में **सिन्धूनाम्**=ज्ञानप्रवाहों के **प्राणः**=प्राण हैं। प्रभुकृपा से ही हमारे जीवनों में ये ज्ञानप्रवाह चलते हैं। **इन्द्रस्य**=एक जितेन्द्रिय पुरुष के **हार्दिम्**=हृदय में **मनीषया**=बुद्धि के साथ **आविशन्**=प्रवेश करते हुए प्रभु **कलशान् अचिक्रदत्**=सोलह कलाओं के आधारभूत इन शरीरों को प्रभु के आह्वानवाला बनाते हैं। प्रभुकृपा से ही हममें प्रभु के आह्वान की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

भावार्थ—वे सर्वद्रष्टा प्रभु हमारी बुद्धियों को शक्ति से सिक्त करते हैं—हमें दीर्घ व प्रकाशमय जीवन प्राप्त कराते हैं। प्रभुकृपा से हमारे जीवन में ज्ञानप्रवाह चलते हैं और हम प्रभुकृपा से ही प्रभु-प्रवण वृत्तिवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

द्युता-कृपा

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंच्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे॥ ५९॥

१. हे प्रभो! **ते त्वेषः**=आपकी दीप्ति **धूमः**=हमारे अन्दर घुस आनेवाले वासनारूप शत्रुओं को कम्पित करनेवाली है (धू कम्पने)। यह **ऊर्णोतु**=हमें आच्छादित करनेवाली हो। सब शत्रुओं के आक्रमण से बचानेवाली हो। **दिवि**=यह मस्तिष्करूप द्युलोक में **सन् (सत्)**=उत्तम हो—हमें सात्त्विक वृत्तिवाला बनाए। **शुक्रः**=यह हमें गतिमय जीवनवाला बनाए तथा **आततः**=यह सब ओर विस्तारवाली हो—यह हमें विशाल हृदय बनाए। २. जिस समय प्रभु की उस ज्ञानदीप्ति से हम 'सन्, शुक्र व आतत' बन पाएँ उस समय हमें अपने इस उत्कर्ष का गर्व न हो जाए। इसके लिए हम प्रभु का इस रूप में स्मरण करें कि—**सूरः न**=हे प्रभो! आप सूर्य के समान हो और हे **पावक**=हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले प्रभो! **त्वम्**=आप **हि**=निश्चिय से **द्युता**=ज्ञानज्योति से तथा **कृपा**=सामर्थ्य से **रोचसे**=चमकते हो। सब ज्योति व शक्ति आपकी ही है।

भावार्थ—प्रभु की दीप्ति हमारी वासनाओं को कम्पित करके दूर करती हैं—यह हमें 'उत्तम गतिशील व विशाल हृदय' बनाती है। प्रभु ही हमारे अन्दर ज्योति व शक्ति से दीप्त होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

पवित्र हृदय व सोमरक्षण

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः।
मर्यइव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा॥ ६०॥

१. **इन्द्रः**=सोम (वीर्यशक्ति) **इन्द्रस्य**=जितेन्द्रिय पुरुष के **निष्कृतिम्**=संस्कृत—पवित्र हृदय की ओर **वा**=निश्चय से **प्र एति**=प्रकर्षेण प्राप्त होता है। हृदय के पवित्र होने पर सोम की शरीर में ऊर्ध्वगति होती ही है। सोम का रक्षण होने पर **सखा**=प्रभु का मित्र बना हुआ वह सोमी पुरुष **सख्युः**=उस सबके सखा प्रभु के **संगिरः**=आदेशों को **न प्रमिनाति**=हिंसित नहीं करता। यह प्रभु के आदेशों का अवश्य पालन करता है। २. **इव**=जैसे **मर्यः**=एक मनुष्य **योषाः**=पत्नियों से मेलवाला होता है, उसी प्रकार यह **सोमः**=सोम भी **कलशे**=इस सोलह कलाओं के आधारभूत शरीर में **शतयामना पथा**=सौ मंजिलोंवाले (प्रयाणोंवाले) मार्ग के हेतु से, अर्थात् शतवर्षपर्यन्त चलानेवाले दीर्घजीवन के हेतु से—**समर्षसे**=प्राप्त होता है। वस्तुतः सोम एक मनुष्य का इतना प्रिय होना चाहिए जैसे पत्नी पति को प्रिय होती है।

भावार्थ—हम हृदय को पवित्र बनाते हुए अपने शरीर में सोम का रक्षण करनेवाले बनें। यह सोमी पुरुष प्रभु के आदेशों का पालन करता है। शरीर में सुरक्षित सोम हमें सौ वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

स्वभानवः-विप्राः-यविष्ठाः

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे॥ ६१॥

१. **अक्षन्**=इन्होंने सोम का भक्षण किया है—सोम को शरीर में सुरक्षित किया है। परिणामतः **अमीमदन्त**=आनन्दित हुए हैं। सोमरक्षण से 'नीरोगता-निर्मलता व दीप्ति' की प्राप्ति होकर आनन्द का अनुभव होता है। इन्होंने **हि**=निश्चय से **प्रियान्**=प्रिय लगनेवाले संसार के भोगों को **अव अधूषत**=अपने से दूर कम्पित किया है (स त्वं प्रियान् प्रियरूपाँश्च कामान् अभिध्यायन्नचिकेतो इत्यस्ताक्षीः। कठो०)। २. इसी उद्देश्य से **अस्तोषत**=इन्होंने प्रभु-स्तवन किया है। **स्वभानवः**=ये आत्मदीप्तिवाले बने हैं। **विप्राः**=ये विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले हुए हैं। **यविष्ठाः**=बुराइयों को दूर करके अच्छाइयों को इन्होंने अपने से मिलाया है। हम इन लोगों को ही **ईमहे**=प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं। इनके सम्पर्क में हम भी इन-जैसे बन पाएँगे।

भावार्थ—हमें उन लोगों का सम्पर्क प्राप्त हो जो सोमरक्षण द्वारा अपने अन्दर आनन्द का अनुभव करते हैं। प्रिय लगनेवाले भोगों से भी ऊपर उठते हैं। प्रभु-स्तवन द्वारा आत्मदीप्तिवाले होते हैं। अपना विशेषरूप से पूरण करते हुए बुराइयों को अपने से दूर करते हैं और अच्छाइयों को अपने से मिलाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिगास्तारपङ्क्तिः**॥

उत्तम 'आयुष्य-प्रजा व धन'

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम्॥ ६२॥

१. हे **सोम्यासः**=सोमरक्षण द्वारा सोम्य (शान्त) स्वभाववाले **पितरः**=पितरो! आप **आयात**=हमारे समीप सर्वथा प्राप्त होओ। आप **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **गम्भीरैः पितृयाणैः पथिभिः**=गम्भीर (न कि उथले) पितरों से जाने योग्य मार्गों के द्वारा **आयुः प्रजां च**=दीर्घजीवन

व उत्तम सन्तति को **दधतः**=धारण करते हुए होओ। आपकी सत्प्रेरणाओं से हम उस मार्ग पर चलें जिससे उत्तम आयुष्य व प्रजा को पानेवाले बनें २. **च**=और आप **नः**=हमें **रायः पोषैः**=धन के पोषण से **अभि सचध्वम्**=उभयतः समवेत कीजिए। हम बाह्य धन को भी प्राप्त करें और आन्तर धन को भी प्राप्त करनेवाले बनें। बाह्यधन हमारी भौतिक अवश्कताओं को पूरा करेगा और आन्तर धन से हमारी अध्यात्मशक्ति का पोषण होगा।

भावार्थ—पितरों से सत्प्रेरणाओं को प्राप्त करते हुए हम गम्भीर पितृयाण कर्मों से चलते हुए 'उत्तम आयुष्य, प्रजा व धन' को प्राप्त करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**स्वराडास्तारपङ्क्तिः**॥

प्रतिमास (पूर्णिमा पर) पितरों का आना

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान्हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः॥ ६३॥

१. हे **सोम्यासः**=सोम का सम्पादन करनेवाले सौम्य स्वभाव **पितरः**=पितरो! **गम्भीरैः**=गम्भीर विचार परिपूर्ण **पूर्याणैः**=ब्रह्मपुरी की ओर ले-जानेवाले **पथिभिः**=मार्गों से **परा यात**=उत्कृष्ट मोक्षमार्ग की ओर गतिवाले होओ। आप नित्य स्वाध्याययुक्त होकर ब्रह्मदर्शन के लिए यत्नशील होओ। इसी उद्देश्य से आप गृहस्थ से ऊपर उठकर वनस्थ हुए हो। २. **अधा पुनः**=अब फिर भी **मासि**=महीने के बीतने पर **नः गृहान्**=हमारे इन घरों को **हविः अत्तुम्**=यज्ञशिष्ट पवित्र भोजन को ग्रहण करने के लिए **आयात**=आओ, जिससे हम आपकी प्रेरणाओं के अनुसार चलते हुए **सुप्रजसः**=उत्तम प्रजावाले व **सुवीराः**=सुवीर बन पाएँ।

भावार्थ—सौम्य पितर ब्रह्मप्राप्ति के गम्भीर मार्ग से गमनवाले हों। वे प्रतिमास हमारे घरों पर हवि ग्रहण करने का अनुग्रह करें और हमें सत्प्रेरणाओं के द्वारा उत्तम प्रजावाले व वीर बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पितरों को स्वस्थ बनाना

यद्वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः।
तद्व एतत्पुनरा प्यायियामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम्॥ ६४॥

१. वानप्रस्थाश्रम ही पितृलोक है। **पितृलोकं गमयन्**=पितृलोक में प्राप्त कराता हुआ यह **जातवेदाः अग्निः**=अंग-प्रत्यंग में विद्यमान अग्नितत्त्व **यत्**=यदि हे पितरो! **वः**=तुम्हारे **एकम् अंगम् अजहात्**=एक अंग को छोड़ गया है तो **वः**=तुम्हारे **तत् एतत्**=उस इस अंग को पुनः **अप्यायियामि**=फिर से आप्यायित करता हूँ। आपको शक्तिशाली बनाता हूँ। यदि अकस्मात् पितरों का कोई एक अंग अग्नितत्त्व की कमी के कारण शिथिल हो गया है तो उसे उचित औषधोपचार द्वारा सशक्त करना आवश्यक है। २. अंगों के सशक्त बनने पर हे **पितरः**=पितरो! **साङ्गाः**=सब अंगों से स्वस्थ होते हुए आप **स्वर्गे**=नित्य स्वाध्याय द्वारा प्रकाशमय लोक में **मादयध्वम्**=आनन्दित होओ।

भावार्थ—यदि पितरों का कोई अंग निर्बल हो जाए तो उसे उचित औषधोपचार द्वारा स्वस्थ करके उन्हें वानप्रस्थ में आनन्दमय जीवनवाला बनाया जाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

दूतः प्रहितः

अभूद्दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि॥ ६५॥

१. वानप्रस्थाश्रम से समय-समय पर हमारे समीप प्राप्त होनेवाला यह पिता **दूतः अभूत्**=प्रभु का सन्देशवाहक होता है। **प्रहितः**=यह हमारा प्रकृष्ट हित करनेवाला व **जातवेदाः**=ज्ञानी होता है। यह पिता **सायम्**=सायं और **नि अह्ने**=प्रातः **नृभिः उपवन्द्यः**=गृहस्थ लोगों से वन्दनीय होता है। २. हे गृहस्थ! तू **पितृभ्यः प्रादाः**=पितरों के लिए स्वधा (अन्न) देता है। **स्वधया ते अक्षन्**=आत्मधारण के हेतु से वे इसे खाते हैं। हे **देवः**=दिव्यवृत्तिवाले पुरुष! **त्वम्**=तू भी **प्रयता हवींषि**=इन पवित्र यज्ञशिष्ट भोजनों को **अद्धि**=खा। पितरों को खिलाने के बाद ही खाना ठीक है।

भावार्थ—वानप्रस्थ से आये पितर प्रभु के दूत ही होते हैं—वे हमें हितकर प्रिय ज्ञान देते हैं। हम पितरों को खिलाकर यज्ञशिष्ट पवित्र भोजनों का ही ग्रहण करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिपदास्वराड्गायत्री**॥

भूमिमाता की गोद में

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः। अभ्ये ̐नं भूम ऊर्णुहि॥ ६६॥

१. **हे असौ**=गतमन्त्र में वर्णित पितरों का आदर करनेवाले हे पुरुष! **ते मनः इह**=तेरा मन यहाँ ही हो। तू परिवार के पालन का पूर्ण ध्यान कर। २. हे **भूमे**=भूमिमाता! तू **एनम्**=इस गृहस्थ पुरुष को **अभि ऊर्णुहि**=सर्वतः आच्छादित करनेवाली हो। तेरी गोद में यह इसप्रकार सुरक्षित रहे, **इव**=जिस प्रकार **जामयः**=सन्तान को जन्म देनेवाली माताएँ **ककुत्सलम्**=(क-कु-शब्द सल गतौ) आनन्दप्रद (तुतलाते से) शब्दों के साथ रींगनेवाले बालक को अपनी गोद में सुरक्षित रखती हैं।

भावार्थ—एक गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि परिवार को उन्नत करने की भावना से ओतप्रोत मनवाला हो। भूमिमाता से सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। भूमिमाता की गोद में अपने को उसी प्रकार सुरक्षित अनुभव करे, जैसे एक छोटा बालक माता की गोद में अपने को सुरक्षित अनुभव करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्**॥

पितृषदन लोकों की शोभा

शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि॥ ६७॥

१. जिन घरों में पितरों का आना-जाना बना रहता है, वे घर 'पितृषदन' कहलाते हैं। ये, **पितृषदनाः लोकाः**=पितरों को जहाँ आदरपूर्वक बिठाया जाना होता है, वे लोक (घर) **शुम्भन्ताम्**=शोभावाले हों। घरों में कई बार छोटी-मोटी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। यदि घरों में पितरों का आदर बना रहता है तो पितर आते हैं और समुचित प्रेरणाओं के द्वारा उन समस्याओं को सुलझा जाते हैं, इसप्रकार घरों की शोभा बनी रहती है। २. प्रभु कहते हैं कि हे गृहस्थ! मैं **त्वा**=तुझे **पितृषदने लोके**=इस पितरों के आदरपूर्वक बिठाये जानेवाले लोक में ही **आसादयामि**=बिठाता हूँ। तुम्हारा यह मौलिक कर्त्तव्य है कि तुम पितरों का आदर करनेवाले बनो। यह तुम्हारा 'पितृयज्ञ' है।

भावार्थ—घरों में पितरों (बड़ों) का आदर बना रहे। जब कभी वे वानप्रस्थाश्रम से घर पर आएँ, उन्हें आदरपूर्वक निवास कराया जाए। उनकी प्रेरणाओं को शिरोधार्य किया जाए। ऐसा होने पर घर शोभामान बने रहते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आसुर्यनुष्टुप्**॥

घर=पितरों का बर्हि

येऽ३स्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि॥ ६८॥

१. गृहस्थ को चाहिए कि वह घर को सम्बोधन करता हुआ यही कहे कि हे गृह! **ये**=जो **अस्माकम्**=हमारे **पितरः**=पितर हैं, तू **तेषाम्**=उनका **बर्हिः असि**=आसन है। समय-समय पर जब कभी वे आएँ तब यहाँ वे आदरपूर्वक बिठाये जाएँ। २. 'बर्हिस्' का अर्थ (Light) 'प्रकाश' भी है। हमारा घर पितरों के प्रकाशवाला हो। पितरों से दी गई प्रेरणाएँ हमें प्रकाश दें—उस प्रकाश में हम ठीक मार्ग का आक्रमण करनेवाले हों।

भावार्थ—घरों में पितरों का आदर हो। उनकी सत्प्रेरणाएँ हमारे लिए प्रकाश देकर मार्गदर्शन करानेवाली हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

महान् पिता 'वरुण' प्रभु द्वारा पाशश्रथन (Killing)

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ ६९॥

१. हे **वरुण**=सब पाशों का निवारण करनेवाले प्रभो! आप **उत्तमं पाशम्**=सतगुण के उत्कृष्ट 'सुखसंग व ज्ञानसंग' रूप पाश को **अस्मत्**=हमसे **उत् श्रथाय**=दूर कर डालिए। **अधम्**=तमोगुण के निकृष्ट 'प्रमाद, आलस्य व निन्द्रा' रूप पाश को **अव** (श्रथाय)=विनष्ट करिए। **मध्यमम्**=रजोगुण के मध्यम 'कर्मसंग व तृष्णासंग' रूप पाश को भी वि (श्रथाय) विनष्ट करनेवाले होओ। २. हे **आदित्य**=सबका अपने में आदान कर लेनेवाले प्रभो! **अधा**=अब पाशमुक्त होकर **वयम्**=हम **तव व्रते**=आपकी प्राप्ति के व्रत में—आपको प्राप्त करने को ही लक्ष्य बनाकर **अनागसः**=निष्पाप हों और **अदितये स्याम**=न विनाश के लिए हों—अमृतत्व को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम प्रभुस्मरण द्वारा सब पाशों को छिन्न करके प्रभु-प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य बनाएँ। प्रभु-प्राप्ति के व्रत में चलते हुए निष्पाप व नीरोग (अभूत) बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

समामे व्यामे (बध्यते)

प्रास्मत्पाशान्वरुण मुञ्च सर्वान्यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन्गुपिता रक्षमाणाः॥ ७०॥

१. हे **वरुण**=पाशों का निवारण करनेवाले प्रभो! **अस्मत्**=हमसे **सर्वान् पाशान् मुञ्च**=सब पाशों को मुक्त कर दीजिए। उन पाशों को हमसे छुड़ा दीजिए **यैः**=जिनसे **समामे** (सम आम=रोग) समानरूप से फैल जानेवाले रोगों में **बध्यते**=बाँधा जाता है और **यैः**=जिनसे **व्यामे**=(वि आम) विशिष्ट रोगों में जकड़ा जाता है। २. **अधा**=अब पाशों से मुक्त होने पर, हे **राजन्**=ब्रह्माण्ड के शासक प्रभो! **त्वया**=आपके द्वारा **गुपिताः**=रक्षित हुए-हुए **रक्षमाणाः**=और

शक्ति के अनुसार औरों का रक्षण करते हुए **शतानि शरदं जीवेम**=सौ वर्षपर्यन्त जीनेवाले बनें।

भावार्थ—हम पाशमुक्त हों। परिणामतः रोगमुक्त बनें। प्रभु से रक्षित हुए-हुए तथा यथाशक्ति औरों का रक्षण करते हुए हम सौ वर्ष तक जीनेवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**७१ आसुर्यनुष्टुप्, ७२-७४ आसुरीपङ्क्तिः** ॥

कव्यवाहनं, पितृयान्, सोमवान्

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥
सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥
पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥
यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥

१. अग्नि आदि देवताओं को अग्निहोत्र में दिया जानेवाला अन्न हव्य कहलाता है। पितरों को दिया जानेवाला अन्न—आदरपूर्वक उनके लिए परोसा जानेवाला अन्न कव्य। इस **कव्यवाहनाय**=कव्य को प्राप्त करानेवाले **अग्नये**=प्रगतिशील गृहस्थ के लिए **स्वधा**=आत्मधारण के लिए पर्याप्त अन्न हो तथा **नमः**=नमस्कार (आदर) हो। २. इस **पितृमते**=प्रशस्त पितरोंवाले—बड़ों का आदर करनेवाले **सोमाय**=सौम्य स्वभाव गृहस्थ के लिए **स्वधा नमः**=अन्न व आदर हो। ३. **सोमवद्भ्यः**=इन सौम्य सन्तानोंवाले—सोम का रक्षण करनेवाले सन्तानों से युक्त—**पितृभ्यः**=पितरों के लिए **स्वधा नमः**=अन्न व आदर हो। ४. इस **पितृमते**=प्रशस्त पितरोंवाले **यमाय**=संयत जीवनवाले गृहस्थ के लिए **स्वधा नमः**=अन्न व आदर हो।

भावार्थ—एक सद्गृहस्थ को पितरों के लिए आवश्यक अन्न प्राप्त करानेवाला बनना चाहिए। वह सौम्य स्वभाव हो। सोम का (वीर्य का) अपने अन्दर रक्षण करनेवाला हो। संयत जीवनवाला हो। इस गृहस्थ को अन्न-रस की कमी नहीं रहती तथा उचित आदर प्राप्त होता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**७५ आसुरीगायत्री, ७६ आसुर्युष्णिक्, ७७ दैवीजगती** ॥

परदादा, दादा व पिता

एतत्ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥
एतत्ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥
एतत्ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥

१. एक गृहस्थ युवक के परदादा आज से ५० वर्ष पूर्व वानप्रस्थ बने थे, इसी प्रकार इसके दादा २५ वर्ष पूर्व वनस्थ हुए थे। वहाँ वनों में कितने ही अन्य अपने समान वनस्थों के साथ उनका उठना-बैठना व परिचय हो गया था। आज वे अपने घर में आते हैं तो उनके साथियों के आने का भी सम्भव हो ही सकता है। इसके पिता तो अभी समीप भूत में ही वनस्थ हुए हैं। वे अभी इतने परिचित नहीं बना पाये। वे अभी अकेले ही आये हैं। २. इन सबके आने पर यह गृहस्थ उन्हें आदरपूर्वक कहता है कि हे **प्रततामह**=परदादाजी! **एतत्**=यह **ते**=आपके लिए **स्वधा**=अन्न है। **च**=और उनके लिए भी **स्वधा**=अन्न है, **ये**=जो **त्वाम् अनु**=आपके साथ आये हैं। ३. इसी प्रकार वह दादाजी के लिए भी कहता है कि हे **ततामह**=दादाजी! **एतत्**=यह **ते**=आपके लिए **स्वधा**=अन्न है **च**=और **ये**=जो **त्वाम् अनु**=आपके साथ आये हैं, परन्तु पिताजी

के लिए वह इतना ही कहता है कि हे **तत**=पितः! **एतत्**=यह **ते**=आपके लिए **स्वधा**=अन्न है।

भावार्थ—हम घर पर पधारे हुए वनस्थ परदादा, दादा व पिताजी के लिए उचित भोजन का परिवेषण करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**यमः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**७८ आसुरीत्रिष्टुप्, ७९ आसुरीपङ्क्तिः, ८० आसुरीजगती**॥

'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' स्थ पितर

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः॥ ७८॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः॥ ७९॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः॥ ८०॥

१. **पृथिविषद्भ्यः**=पृथिवीस्थ अग्नि आदि देवों की विद्या में निपुण **पितृभ्यः**=इन ज्ञानप्रद पितरों के लिए **स्वधा**=हम आत्मधारण के लिए पर्याप्त अन्न प्राप्त कराएँ। २. इसी प्रकार **अन्तरिक्षसद्भ्यः**=अन्तरिक्षस्थ वायु आदि देवों की विद्या में निपुण **पितृभ्यः**=ज्ञानप्रद पितरों के लिए **स्वधाः**=अन्न प्राप्त कराया जाए और **दिविषद्भ्यः**=द्युलोकस्थ सूर्यादि देवों के ज्ञाता **पितृभ्यः**=पितरों के लिए **स्वधा**=अन्न हो।

भावार्थ—हम 'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोकस्थ' 'अग्नि, वायु व सूर्य' आदि देवों की विद्या में निपुण ज्ञानप्रदाता पितरों के लिए उचित अन्न प्राप्त कराते हुए उनका आदर करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**८१ प्राजापत्यऽनुष्टुप्, ८२ साम्नीबृहती, ८३, ८४ साम्नीत्रिष्टुप्, ८५ आसुरीबृहती**॥

पितरों के लिए 'स्वधा-व सत्कार'

नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय॥ ८१॥

नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे॥ ८२॥

नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत्क्रूरं तस्मै॥ ८३॥

नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत्स्योनं तस्मै॥ ८४॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः॥ ८५॥

१. हे **पितरः**=पितरो! **वः ऊर्जे नमः**=आपके बल व प्राणशक्ति के लिए हम नमस्कार करते हैं। हे **पितरः**=पितरो! **वः रसाय नमः**=आपकी वाणी में जो रस है उसके लिए हम नमस्कार करते हैं। २. हे **पितरः**=पितरो! **वः भामाय नमः**=आपकी तेजोदीप्ति के लिए हम नमस्कार करते हैं। हे **पितरः**=पितरो! **वः मन्यवे नमः**=आपके ज्ञान (मन् अवबोधे) के लिए हम नमस्कार करते हैं। ३. हे **पितरः**=पितरो! **यत्**=जो **वः**=आपका **घोरम्**=शत्रुविनाशरूप हिंसात्मक कार्य है **तस्मै नमः**=उसके लिए नमस्कार हो। **हे पितरः**=पितरो! **यत्**=जो **वः**=आपका **क्रूरम्**=निर्भयता पूर्ण शत्रुविच्छेदरूप कार्य है **तस्मै नमः**=उसके लिए हम आदर करते हैं। ४. हे **पितरः**=पितरो! शत्रुविनाश द्वारा **यत्**=जो **वः**=आपका **शिवम्**=कल्याणकर कार्य है **तस्मै नमः**=उनके लिए हम नमस्कार करते हैं। निर्दयतापूर्वक पूर्णरूपेण शत्रुविनाश द्वारा **यत् वः स्योनम्**=जो आपका सुख प्रदानरूप कार्य है **तस्मै नमः**=उसके लिए हम आपका आदर करते हैं। ५. हे **पितरः**=पितरो! **वः नमः**=आपके लिए हम नमस्कार करते हैं। हे **पितरः**=पितरो! **वः स्वधः**=आपके शरीरधारण के लिए हम आवश्यक अन्न प्राप्त कराते हैं।

भावार्थ—पितर बल व प्राणशक्ति सम्पन्न हैं, उनकी वाणी में रस है। वे तेजस्विता व ज्ञान की दीप्तिवाले हैं। शत्रुओं के लिए घोर व क्रूर हैं—काम, क्रोध आदि शत्रुओं के विनाश में दया नहीं करते। कल्याण व सुख को प्राप्त करानेवाले हैं। हम इनके लिए अन्न प्राप्त कराते हैं और इनका सत्कार करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**पितरः**॥ छन्दः—**८६ चतुष्पदाककुम्मत्युष्णिक्, ८७ चतुष्पदाशङ्कुमत्युष्णिक्**॥

पितर पितर हों, हम श्रेष्ठ बनें

येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्माँस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ॥ ८६॥
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्माँस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म॥ ८७॥

१. **ये**=जो **अत्र**=यहाँ **पितरः**=पितर हैं, ये **यूयम्**=जो आप **अत्र**=यहाँ **पितरः स्थ**=पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त हो, जो **युष्मान् अनु**=आपका अनुसरण करनेवाले हैं। **यूयम्**=आप **तेषाम्**=उन सब पितरों में **श्रेष्ठाः भूयास्थ**=श्रेष्ठ हैं, अर्थात् पितरों में वे पितर जो साधना करके पालनात्मक कार्यों में प्रवृत्त हैं, वे श्रेष्ठ हैं। २. **ये**=जो **इह**=यहाँ **पितरः**=पितर **जीवाः**=जीवनशक्ति से परिपूर्ण हैं। **इह**=यहाँ उनके समीप **वयं स्मः**=हम होते हैं। **ते**=वे सब पितर **अस्मान् अनु**=हमें अनुकूलता से प्राप्त होते हैं। **वयम्**=हम **तेषाम्**=उनके ही बन जाते हैं—उनके प्रति अपना अर्पण करते हैं और इसप्रकार हम **श्रेष्ठाः भूयास्म**=श्रेष्ठ हों।

भावार्थ—पितर सचमुच पितर हों—पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त हों। हम उनके समीप रहकर श्रेष्ठ जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**अग्निः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

'द्युमान् अजर' देव की दीप्ति का दर्शन

आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवि। इषं स्तोतृभ्य आ भर॥ ८८॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **त्वा आइधीमहि**=आपको हम अपने में सर्वथा दीप्त करते हैं—आपके प्रकाश को हृदयों में देखने के लिए यत्नशील होते हैं। आप हे **देव**=प्रकाशमय प्रभो! **द्युमन्तम्**=ज्योतिर्मय हैं, **अजरम्**=अजीर्ण शक्तिवाले हैं—आप ज्योति व शक्ति के पुञ्ज हैं। २. **यत्**=जो **घा**=निश्चय से **सः**=वह **ते**=आपकी **समित्**=दीप्ति है, वह **पनीयसी**=अतिशयेन स्तुत्य है। **द्यवि दीदयति**=आपकी दीप्ति सम्पूर्ण द्युलोक में दीप्त है—हमारे मस्तिष्करूप द्युलोकों को भी वह दीप्त करती है। हे प्रभो! **स्तोतृभ्यः**=हम स्तोताओं के लिए **इषं आभर**=प्रेरणा प्राप्त कराइए। आपसे प्रेरणा प्राप्त करते हुए हम उत्कृष्ट जीवनवाले हों।

भावार्थ—हम हृदयों में प्रभु को समिद्ध करें। प्रभु की प्रशस्त दीप्ति हमारे मस्तिष्क को उज्ज्वल करे। हम प्रभु से प्रेरणा प्राप्त करें। सच्चे स्तोता बनकर ही तो हम इसे प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**चन्द्रमाः**॥ छन्दः—**पञ्चपदापथ्यापङ्क्तिः**॥

'चन्द्रमा+सुपर्ण, नकि हिरण्यनेमि'

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥ ८९॥

१. **चन्द्रमा**=गतमन्त्र के अनुसार प्रभु की प्रेरणा को सुननेवाला व्यक्ति अंहकारशून्य

मनोवृत्तिवाला होता है, **अप्सु अन्तः**=वह सदा कर्मों में व्याप्त रहता—कर्मशील होता है। **सुपर्णः**=उत्तम पालनात्मक व पूरणात्मक कर्मों में प्रवृत्त यह व्यक्ति **दिवि**=ज्ञान के प्रकाश में **आधावते**=अपने को सर्वथा शुद्ध करता है। २. प्रभु कहते हैं कि **रोदसी**=सारे द्यावापृथिवी में रहनेवाले मनुष्य **मे अस्य वित्तम्**=मेरी इस बात को समझलें कि **वः**=तुममें से **हिरण्यनेमयः**=हिरण्य (सोना) ही जिनकी नेमि (परिधि) है, वे धनासक्त लोग **विद्युतः पदं न विन्दन्ति**=उस विशिष्ट दीप्तिवाले ज्योतिर्मय प्रभु को नहीं प्राप्त करते। धनासक्ति से ऊपर उठकर ही प्रभु की प्राप्ति संभव होती है।

भावार्थ—हम आह्लादमय मनोवृत्ति से कर्त्तव्य-कर्मों को करते रहें—ज्ञान में अपने को पवित्र करने का प्रयत्न करे। धनासक्ति से ऊपर उठकर प्रभु-प्राप्ति के लिए यत्नशील हों।

॥ इत्यष्टादशं काण्डम् ॥